ओ३म्

भगवती-भाष्य-समलंकृतम्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

(सचित्र)



अनुवादक, सम्पादक एवं टिप्पणिकर्ता

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेदरत्न, वेदमार्तण्ड



विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

सर्ग बालकाण्डम्

१. अवतरणिका

२. अवतरणिका

३. कथा का आरम्भ

४. दशरथ-राज्य का वर्णन

५. महाराज दशरथ का मन्त्रिमण्डल

६. महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ

७. महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ

८. महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ

९. रामादि जन्म एवं बाल्यकाल

१०. विश्वामित्रजी का आगमन

११. विश्वामित्रजी द्वारा राम की याचना और दशरथ का मोह

...-सूची ➤

सर्ग	विषय	पृष्ठ सं०
१२.	विश्वामित्रजी का क्रोध और वसिष्ठ का दशरथ को समझाना	१८
१३.	राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ प्रस्थान	१९
१४.	शिवाश्रम में विश्राम	२१
१५.	ताटका-वध की प्रेरणा	२२
१६.	ताटका-वध	२४
१७.	विश्वामित्र द्वारा राम को अस्त्रदान	२५
१८.	सिद्धाश्रम	२७
१९.	मारीच और सुबाहु राक्षसों का पराभव	२८
२०.	मिथिला को प्रस्थान	२९
२१.	गङ्गा के तट पर	३०
२२.	विशाला नगरी में	३१
२३.	अहल्या-उद्धार	३२
२४.	मिथिलापुरी में	३४
२५.	राजसभा में जनक का धुनष और सीता का परिचय देना	३६
२६.	धनुष-भङ्ग और दशरथ के पास दूत भेजना	३७
२७.	दशरथ की मिथिला चलने के लिए तैयारियाँ	३९
२८.	राजा जनक द्वारा दशरथ का आतिथ्य	४१
२९.	कुशध्वज को बुलाना—इक्ष्वाकुवंश-कथन	४२
३०.	जनक-वंश वर्णन	४४
३१.	चारों भाइयों के विवाह-सम्बन्ध का निश्चय	४६
३२.	विवाह-संस्कार	४७
३३.	बारात की वापसी और परशुराम से मुठभेड़	५०
३४.	राम-परशुराम संवाद	५१
३५.	परशुराम का पराभव	५२
३६.	अयोध्या-आगमन, भरत-शत्रुघ्न का ननिहाल गमन	५३

ओ३म्

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

बालकाण्डम्

➤ प्रथमः सर्गः ➤ (१)

अवतरणिका

तपः स्वाध्यायनिरतं[१] तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्॥ १॥

तप और स्वाध्याय में निरत, वक्ताओं में चतुर एवं मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी से तपस्वी वाल्मीकि मुनि ने पूछा—

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं[२] लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च[३] सत्यवाक्यो[४] दृढव्रतः[५]॥ २॥

---

१. महर्षि नारद कितने स्वाध्यायशील थे, यह बात निम्न वर्णन से स्पष्ट है—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्, इतिहासपुराणं पञ्चं, वेदानां वेदं, पित्र्यं, राशिं, दैवं, निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं, देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां, सर्पदेवजनविद्याम्, एतद्भगवोऽध्येमि।

—छान्दो० उ० ७।१।२

नारद ने कहा—मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—चारों वेदों को जानता हूँ। इनके अतिरिक्त इतिहास-पुराण (ब्राह्मण तथा कल्पादि) वेदों का वेद=व्याकरण तथा निरुक्त, पित्र्य=वायुविज्ञान, राशि=गणितविद्या, दैव=प्रकृतिविज्ञान, निधि=भूगर्भविद्या, वाकोवाक्य=तर्कशास्त्र, एकायन=ब्रह्मविज्ञान, इन्द्रिय-विज्ञान, भक्ति-शास्त्र, पञ्चभूतज्ञान, धनुर्वेद, ज्योतिष-शास्त्र, सर्पविज्ञान, देवजन-विज्ञान=सर्पों को वश में करनेवाली=गन्धर्व-विद्या को मैं जानता हूँ। इतना मैंने अध्ययन किया है। यह है महर्षि नारद का अद्भुत स्वाध्याय!

२. लोगों में एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का जीवन उनके उत्पन्न होने से १०,००० (दश सहस्र) वर्ष पूर्व लिख दिया था, परन्तु यह सर्वथा मिथ्या एवं भ्रान्त धारणा है। श्लोक में शब्द है **साम्प्रतम्**—जिसका अर्थ है इस समय, वर्तमानकाल में। अन्यत्र इससे भी स्पष्ट वर्णन है—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥

—बाल० २।२५

श्रीराम के राज्यसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् महर्षि वाल्मीकि ने विचित्र पदों से युक्त इस काव्य की रचना की।

३. श्रीराम की कृतज्ञता का अवलोकन कीजिए—

कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

—अयो० १।९

श्रीराम अपने प्रति किये गये एक ही उपकार से सन्तुष्ट हो जाते हैं, परन्तु उनके प्रति सैकड़ों अपकार भी किये जाएँ तो भी वे उनकी ओर कभी ध्यान नहीं देते।

४. श्रीराम की प्रतिज्ञा है—

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन।

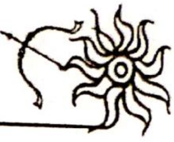
—किष्किन्धा० ६।१९

न मैंने कभी असत्य भाषण किया है, न करूँगा।

५. दृढ़व्रती कैसे थे?

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

—अरण्य० ८।७



भगवन्! इस समय इस संसार में गुणवान्, शूरवीर, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़-प्रतिज्ञ कौन है?

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥ ३॥

सदाचार से युक्त, सब प्राणियों का हित करने-वाला, विद्वान्, सामर्थ्यवान् और प्रिय-दर्शन कौन है?

आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥ ४॥

धैर्ययुक्त, काम-क्रोधादि शत्रुओं का विजेता, कान्तियुक्त, ईर्ष्या तथा निन्दा न करनेवाला तथा युद्ध में क्रुद्ध होने पर देवताओं को भी भयभीत करनेवाला कौन है?

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्॥ ५॥

हे महर्षे! ऐसे गुणों से युक्त व्यक्ति के सम्बन्ध में जानने की मुझे उत्कट अभिलाषा है और आप इस प्रकार के मनुष्य को जानने में समर्थ हैं।

श्रुत्वा चैतत् त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्॥ ६॥

यह सुन, तीनों लोको का वृत्तान्त जाननेवाले देवर्षि नारद प्रसन्न होकर कहने लगे—

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः[१]॥ ७॥

हे मुने! आपने जिन बहुत-से तथा दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है, उनसे युक्त मनुष्य के सम्बन्ध में सुनिए—मैं सोच-विचार के पश्चात् कहता हूँ।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी॥ ८॥

इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न, राम नाम से लोगों में विख्यात, श्रीरामचन्द्र नियतस्वभाव (मन को वश में रखनेवाले) अतिबलवान्, तेजस्वी, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं।

बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥ ९॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥ १०॥

वे श्रीराम बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, मधुरभाषी, श्रीमान्, शत्रुनाशक, विशाल कन्धोंवाले, गोल तथा मोटी भुजाओंवाले, शंख के समान गर्दनवाले, बड़ी ठोड़ीवाले और बड़े भारी धनुष को धारण करनेवाले हैं। उनके गर्दन की हड्डियाँ मांस से छिपी हुई हैं। वे शत्रु का दमन करनेवाले हैं। उनकी भुजाएँ घुटनों तक लटकती हैं। उनका सिर सुन्दर एवं सुडौल है, माथा चौड़ा है। वे अच्छे विक्रमशाली हैं।

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥ ११॥

उनके अङ्गों का विन्यास सम है। वे न बहुत छोटे हैं, न बहुत बड़े। उनके शरीर का रंग चिकना एवं सुन्दर है। वे बड़े प्रतापी हैं। उनकी छाती उभरी हुई है और नेत्र विशाल हैं। उनके सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर हैं और वे शुभ लक्षणों से सम्पन्न हैं।

हे सीते! मैं अपने जीवन का बलिदान कर सकता हूँ, लक्ष्मण और तुझे भी छोड़ सकता हूँ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को और विशेषकर उस प्रतिज्ञा को जो ब्राह्मणों के समक्ष की हो, कभी नहीं छोड़ सकता।

१. श्रीराम अवतार नहीं थे, यह बात श्लोक में पड़े शब्द 'नरः' से ही सिद्ध है। वाल्मीकि ने मनुष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया है और नारदजी ने मनुष्य का ही वर्णन किया है। अवतारवाद वेद के भी विरुद्ध है। वेद में ईश्वर को 'अजः' (ऋ० ७।३५।१३) कभी जन्म न लेनेवाला कहा है। अन्यत्र कहा है—**स पर्यगात्** (यजुः० ४०।८) वह सर्वत्र व्यापक है। जो अजन्मा है उसका जन्म कैसा? जो सर्वत्र व्यापक है वह एकदेशी कैसे हो सकता है? अवतार का अर्थ होता है उतरना। जो कभी चढ़ा ही नहीं उसका अवतरण कैसा?

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥ १२॥

वे धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, परोपकारी, कीर्तियुक्त, ज्ञाननिष्ठ, पवित्र, जितेन्द्रिय और समाधि लगानेवाले हैं।

प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥ १३॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥ १४॥

वे प्रजापति ब्रह्मा के समान प्रजा के रक्षक, अतिशोभावान् और सबके पोषक हैं। वे शत्रुओं का नाश करनेवाले हैं। वे प्राणिमात्र के रक्षक और धर्म के प्रवर्तक हैं। वे अपने प्रजा-पालनरूप धर्म के रक्षक, स्वजनों के पालक, वेद और वेदाङ्गों के मर्मज्ञ तथा धनुर्वेद में निष्णात हैं (शास्त्र और शस्त्र दोनों में प्रवीण हैं)।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥ १५॥

वे सब शास्त्रों के तत्त्वों को भली-भाँति जाननेवाले, उत्तम स्मरणशक्ति से युक्त, प्रतिभा-शाली (सूझ-बूझवाले), सर्वप्रिय, सज्जन, कभी दीनता न दिखानेवाले और लौकिक तथा अलौकिक क्रियाओं में कुशल हैं।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः[१] सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥ १६॥

जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में पहुँचती हैं उसी प्रकार उनके पास सदा सज्जनों का समागम लगा रहता है। वे आर्य हैं, वे समदृष्टि हैं और सदा प्रियदर्शन हैं।

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥ १७॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः॥ १८॥

वे सब गुणों से युक्त और कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले हैं। वे गम्भीरता में समुद्र के समान, धैर्य में हिमालय के तुल्य, पराक्रम में विष्णु के सदृश, प्रियदर्शन में चन्द्रमा-जैसे, क्षमा में पृथिवी की भाँति और क्रोध में कालाग्नि के समान हैं। वे दान में कुबेर के समान और सत्य-भाषण में मानो दूसरे धर्म हैं।

---

१. यहाँ श्रीराम को 'आर्य' कहा गया है। आजकल कुछ व्यक्ति आर्य शब्द से चिढ़ते हैं। वस्तुतः हम हैं आर्य ही। चारों वेदों में, मनु आदि स्मृतियों में, उपनिषदों में, रामायण, महाभारत और अठारह पुराणों में सर्वत्र हमारा नाम आर्य ही बताया गया है। वेद का तो यहाँ तक आदेश है—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ —ऋ० ९।६३।५

अपने आत्मा को दिव्यगुणों से अलंकृत करते हुए, तत्परता के साथ कार्य करते हुए, शत्रुओं को परे भगाते हुए सम्पूर्ण संसार को आर्य बनाते हुए हम सर्वत्र विचरें।

निरुक्तकार यास्क लिखते हैं—

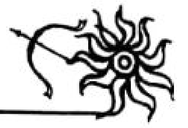
आर्य ईश्वरपुत्रः। —नि० ६।२६।१

आर्य का अर्थ है ईश्वर का पुत्र।

श्री अरविन्दुघोष लिखते हैं—

The word Arya expresses a particular ethical and social order of well-governed life, candour, courtesy, nobility, straight dealing, courage, gentleness, purity, humanity, compassion, protection of the weak, liberty, observance of social duties, eagerness for knowledge, respect for the wise and the learned and the social accomplishment. There is no word in human speech that has a nobler history. —Arya Vol. I P. 63

'आर्य' शब्द में उदारता, नम्रता, श्रेष्ठता, सरलता, साहस, पवित्रता, दया, निर्बल-संरक्षण, ज्ञान के लिए उत्सुकता, सामाजिक कर्तव्य-पालन आदि सब उत्तम गुणों का समावेश हो जाता है। मानवीय भाषा में इससे उत्तम और कोई शब्द नहीं है।



द्वितीयः सर्गः (२)

अवतरणिका

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम्॥ १॥

देवर्षि नारद के मुख से इस वृत्तान्त को सुन महर्षि वाल्मीकि ने अपने शिष्य भारद्वाजसहित नारदजी का सत्कार किया।

यथावत् पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तथा।
आपृच्छ्यैवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम्[1]॥ २॥

देवर्षि नारद वाल्मीकि द्वारा विधिवत् सत्कृत होकर उनकी आज्ञा पा आकाश-मार्ग से चले गये।

स मुहूर्तं गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा।
जगाम तमसा तीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः॥ ३॥

नारदजी के देवाश्रम चले जाने के पश्चात् वाल्मीकिजी स्नान के लिए गङ्गा के समीप तमसा नदी के तट पर पहुँचे।

तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम्।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिःस्वनम्॥ ४॥

नदी के समीप ही उस वन में महर्षि वाल्मीकि ने मीठी बोली बोलनेवाले, सर्वदा साथ रहनेवाले एवं विहार करते हुए क्रौञ्च पक्षी के जोड़े को देखा।

तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः॥ ५॥

इतने में पक्षियों के शत्रु एक व्याध ने मुनि के समक्ष ही उस जोड़े में से नर क्रौञ्च पक्षी को मार डाला।

तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराव करुणां गिरम्॥ ६॥

क्रौञ्ची व्याध द्वारा मारे गये रक्त से लथपथ और पृथिवी पर छटपटाते हुए अपने पति को देखकर करुण स्वर में विलाप करने लगी।

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत॥ ७॥

व्याध द्वारा मारे गये उस पक्षी को देखकर धर्मात्मा महर्षि का हृदय द्रवित हो गया।

ततः [2]करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत्॥ ८॥

उस करुणा की अनुभूति के कारण व्याध के उस कर्म को अधर्म जानकर और विलाप करती हुई क्रौञ्ची को देखकर वाल्मीकिजी के मुख से ये शब्द प्रस्फुटित हुए—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ ९॥

हे निषाद! तूने इस कामोन्मत्त नर पक्षी को मारा है[3], अतः तुझे बहुकालपर्यन्त सुख एवं शान्ति प्राप्त न हो।

तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया॥ १०॥

मा निषाद—इत्यादि कहकर और हृदय में इसका अर्थ विचारने पर वाल्मीकिजी को बड़ी चिन्ता हुई कि इस पक्षी के दुःख से दुखित होकर मैंने क्या कह

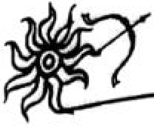
---

१. रामायण काल में छोटे-छोटे हवाई जहाज अनेक व्यक्तियों के पास थे। नारदजी भी इधर-उधर भ्रमण के लिए वायुयान का ही प्रयोग करते थे। अन्यत्र भी आकाश-मार्ग में गमन करने के उदाहरण आयेंगे।

२. कविवर पन्त ने कविता की परिभाषा करते हुए ठीक ही कहा है—

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान॥

३. यह घटना आगे आनेवाली कथा की सूचक है। रावण ने श्रीराम और सीता के जोड़े में से सीता का हरण किया। रावण निषाद के समान और सीता तथा राम क्रौञ्च जोड़े के प्रतीक हैं। काव्य की दृष्टि ये यह घटना अत्यन्त रोचक एवं हृदयहारी है।



डाला।

चिन्तयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः ॥ ११ ॥

महाबुद्धिमान् और शास्त्रज्ञ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने सोच-विचार कर अपने शिष्य से कहा—

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥ १२ ॥

भरद्वाज! शोक-पीड़ित अवस्था में मेरे मुख से अनायास जो श्लोक निकला है, इसमें चार पाद हैं, प्रत्येक पाद में समान अक्षर हैं और वीणा पर भी गाने योग्य है। यह रचना कीर्ति बढ़ानेवाली हो, इसमें कुछ भी अन्यथा न हो।

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम्।
प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः ॥ १३ ॥

शिष्य ने आदेशानुसार महर्षि वाल्मीकि के उस अत्युत्तम वचन को कण्ठस्थ कर लिया, इससे मुनि शिष्य पर बहुत प्रसन्न हुए।

सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि।
तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः ॥ १४ ॥

तदनन्तर मुनिवर उस तीर्थ में यथाविधि स्नान कर और उसी श्लोक पर विचार करते हुए अपने आश्रम में लौट आये[१]।

स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित्।
उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः ॥ १५ ॥

आश्रम में पहुँच, दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो ऋषिवर अपने शिष्यों को अनेक प्रकार की कथाएँ सुनाने लगे।

आजगाम ततो ब्रह्मा चोवाच मुनिपुङ्गवम्।
वृत्तं कथय रामस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् ॥ १६ ॥

इसी बीच ब्रह्माजी वहाँ आये और वाल्मीकिजी से बोले—तुम श्रीराम के चरित्र का वर्णन करो जैसा कि तुमने नारद से सुना है।

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥ १७ ॥

जब तक इस धराधाम पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी तब तक संसार में रामायण-कथा का प्रचार-प्रसार रहेगा।

तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥ १८ ॥

शुद्धान्तःकरणवाले वाल्मीकिजी की समझ में यह बात आ गई कि ऐसे ही श्लोकों में मैं सम्पूर्ण रामायणकाव्य की रचना करूँ।

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थसहितं हितम्।
व्यक्तमन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥ १९ ॥

नारदजी से श्रीराम का चरित्र सुनकर महर्षि वाल्मीकि ने धर्म-अर्थ से युक्त सर्वजन-हितकारी श्रीराम के जीवन की घटनाओं को उत्तम प्रकार से एकत्र करना आरम्भ किया।

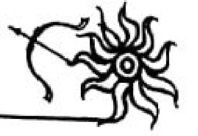
रामलक्ष्मणसीताभी राज्ञा दशरथेन च।
सभार्येण स राष्ट्रेण यत्प्राप्तं तत्र तत्त्वतः ॥ २० ॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्।
तत्सर्वं धर्मवीर्येण यथावत्सम्प्रपश्यति ॥ २१ ॥

१. महर्षि वाल्मीकि के सम्बन्ध में लोगों में एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि वे आरम्भ में डाकू थे। रामायण में तो उनके सम्बन्ध में यही घटना उपलब्ध होती है। वाल्मीकिजी के सम्बन्ध में रामायण को ही प्रामाणिक माना जा सकता है। सीताजी की पवित्रता की साक्षी देते हुए उन्होंने कहा था—

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ॥

हे राम! मैं प्रचेतस मुनि का दसवाँ पुत्र हूँ। मैंने मन, वचन और कर्म से कभी पापाचरण नहीं किया है।

इस श्लोक के विद्यमान रहते हुए महर्षि वाल्मीकि के सम्बन्ध में यह कैसे कहा जा सकता है कि वे यौवन-अवस्था में डाकू रहे होंगे। वे वाल्मीकि कोई दूसरे हो सकते हैं। एक ही नाम के अनेक व्यक्तियों का होना असम्भव नहीं है।



श्रीराम-लक्ष्मण-सीता और पत्नियों तथा राष्ट्र सहित दशरथजी का जो कुछ हँसना, बोलना आदि वृत्तान्त और चरित्र थे उन सबको महर्षि वाल्मीकि ने अपने धर्म-बल से यथावत् जान लिया।

स्त्रीतृतीयेन च तथा यत्प्राप्तं चरता वने।
सत्यसन्धेन रामेण तत्सर्वं चान्ववैक्षत॥ २२॥

सत्यप्रतिज्ञ राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ वन में विचरते हुए जो कुछ किया था उस सबका भी मुनि वाल्मीकि ने साक्षात्कार किया।

ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत्तत्र निर्वृत्तं[१] पाणावामलकं यथा॥ २३॥

तदनन्तर धर्मात्मा मुनि ने एकाग्रचित्त होकर उन सब चरितों को, जो पहले हो चुके थे, हथेली पर रखे हुए आँवले की भाँति देखा।

तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः।
अभिरामस्य रामस्य तत्सर्वं कर्तुमुद्यतः॥ २४॥

सब वृत्तान्तों को सम्यक् प्रकार जान लेने के पश्चात् महामुनि वाल्मीकिजी सर्वप्रिय श्रीराम के चरित को श्लोक-बद्ध करने के लिए उद्यत हुए।

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥ २५॥

श्रीराम के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होने पर महर्षि वाल्मीकि ने विचित्र पदों से युक्त इस सम्पूर्ण काव्य की रचना की।

❮ तृतीयः सर्गः ❯ (३)

कथा का आरम्भ—

कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्॥ १॥

सरयू नदी के तट पर कोसल नामक एक बहुत बड़ा देश था जो सन्तुष्ट जनों से पूर्ण, समृद्धि-सम्पन्न और धन-धान्य से भरपूर था।

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्॥ २॥

वहाँ विश्वप्रसिद्ध अयोध्या नाम की नगरी थी जिसे मनुष्यों में श्रेष्ठ महाराज मनु ने स्वयं बसाया था।

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा॥ ३॥

वह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन (साठ मील) लम्बी और तीन योजन (पन्द्रह मील) चौड़ी थी। उसमें बड़ी सुन्दर लम्बी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं।

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः॥ ४॥

यह राजधानी एक विस्तृत राजपथ से सुशोभित थी। इस राज-पथ से अनेक सड़कें निकाली गई थीं। सड़कों पर प्रतिदिन जल छिड़का जाता था और फूल बिछाये जाते थे।

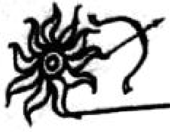
तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा॥ ५॥

इस पुरी में राज्य को समृद्ध करनेवाले महाराज दशरथ उसी प्रकार निवास करते थे जिस प्रकार स्वर्ग (त्रिविष्टप) में इन्द्र बसते हैं।

कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः॥ ६॥

यह नगरी तोरण-द्वारों और सुन्दर चौड़े बाजारों से युक्त थी। सब प्रकार के यन्त्र वहाँ विद्यमान थे

१. **पुरा यत्तत्र निर्वृत्तम्**—पहले जो कुछ हो चुका था—इससे भी यह स्पष्ट है कि रामायण की रचना श्रीराम- जन्म से पूर्व नहीं हुई थी।



तथा नाना कलाविशारद शिल्पी वहाँ वास करते थे।

सुतमागधसम्बाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्।
उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्॥ ७॥

उसमें सूत, मागध और वन्दीजन भी रहते थे। वह नगरी अत्यन्त शोभायमान और देदीप्यमान थी। उसमें ऊँची-ऊँची अटारियोंवाले मकान थे जिन पर ध्वजा और पताकाएँ फहरा रही थीं। परकोटे की दीवारों पर सैकड़ों तोपें चढ़ी हुई थीं।

वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्।
उद्यानाम्रवनोपेतां महतीं सालमेखलाम्॥ ८॥

वह नगरी स्त्रियों की नाट्य-समितियों से युक्त थी। उद्यान और आम के वन नगरी की शोभा को बढ़ा रहे थे। नगरी के चारों ओर साखुओं के लम्बे-लम्बे वृक्ष थे।

दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।
वाजिवारणसम्पूर्णां गोभिरुष्ट्रैःखरैस्तथा॥ ९॥

यह नगरी दुर्गम किलों और खाइयों से युक्त थी। शत्रु इस पर आक्रमण करने में असमर्थ थे। हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट और खच्चर स्थान-स्थान पर दीख पड़ते थे।

चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम्।
सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम्॥ १०॥

उसकी शोभा विचित्र थी—राजभवनों का रंग सुनहरा था। नगरी में सुन्दर स्वरूपवती स्त्रियाँ निवास करती थीं। रत्नों के वहाँ ढेर लगे रहते थे। वहाँ सात मंजिलवाले मकान सर्वत्र दिखाई देते थे।

दुन्दुभीभिर्मृदङ्गैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा।
नादितां भृशमयर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम्॥ ११॥

वह नगरी नगाड़े, मृदङ्ग, वीणा और पणव आदि बाजों की ध्वनि से सदा प्रतिध्वनित हुआ करती थी, पृथिवीतल पर उसकी टक्कर की कोई दूसरी नगरी नहीं थी।

➤ चतुर्थः सर्गः ➤ (४)

दशरथ-राज्य का वर्णन—

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः।
दशरथो महातेजाः वसञ्जगदपालयत्॥ १॥

उस अयोध्या नगरी में वेदार्थ को जाननेवाले, सब वस्तुओं का संग्रह करनेवाले, महातेजस्वी राजा दशरथ प्रजा का पालन करते थे।

तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥ २॥

उस पुरी में सब मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत, अपने-अपने धन से सन्तुष्ट, निर्लोभ और सत्यवादी थे।

नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्[1]॥ ३॥

उस नगरी में कोई ऐसा पुरुष न था जो थोड़े संग्रहवाला हो। सभी गृहस्थी धन-धान्य, गाय-बैल और घोड़ों से युक्त थे।

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः[2]॥ ४॥

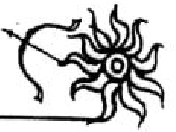
अयोध्यापुरी में कोई भी मनुष्य कामी, कंजूस, निर्दयी, मूर्ख और नास्तिक नहीं था।

---

१. 'साकेत' में मैथिलीशरणजी द्वारा मानो इसी श्लोक का अनुवाद मुखरित हो उठा है—

कौन है ऐसा अभागा गृह कहो।
साथ जिसके अश्व गौशाला न हो॥
धान्यधन परिपूर्ण सबके धाम हैं।
रङ्गशाला से सजे अभिराम हैं॥

२. यह व्यवस्था महाराजा अश्वपति के समय तक निर्बाध गति से चलती रही। उन्होंने घोषणापूर्वक कहा था—



सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीला: सुसंयता:।
मुदिता: शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामला:[१] **॥ ५ ॥**

अयोध्यावासी सभी स्त्री और पुरुष धर्मात्मा एवं जितेन्द्रिय थे। सभी जन प्रसन्न और चरित्र में महर्षियों के समान निर्मल थे।

नाकुण्डली नामुकुटी नास्त्रग्वी नाल्पभोगवान्।
नामृष्टो न लिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते॥ ६ ॥

अयोध्या में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो कानों में कुण्डल, सिर पर मुकुट और गले में माला धारण न करता हो। कोई भी अल्पभोगवाला नहीं था। कोई ऐसा न था जो तैल, फुलेल, चन्दन न लगाता हो। वहाँ कोई ऐसा मनुष्य भी नहीं था जिसके शरीर से (अस्वच्छता के कारण) दुर्गन्ध निकलती हो।

नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक्।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान्॥ ७ ॥

अयोध्या में कोई अशुद्ध अन्नभोजी न था। कोई भी दान न देनेवाला नहीं था। कोई भी अजितेन्द्रिय नहीं था। कोई भी ऐसा व्यक्ति न था जो बाजूबन्द और हाथों में सोने के कड़े न पहनता हो।

नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्कर:।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न सङ्कर: ॥ ८ ॥

अयोध्या में कोई मनुष्य ऐसा न था जो यज्ञ न करता हो, जो नीच स्वभाव का हो, चोर हो या वर्णसंकर हो।

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रिया:।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे॥ ९ ॥

अयोध्यावासी ब्राह्मण अपने नित्यकर्मों में तत्पर, जितेन्द्रिय, दानी और अध्ययनशील थे। वे प्रतिग्रह= दान लेने में हिचकते थे।

नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुत:।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान्विद्यते क्वचित्॥ १० ॥

अयोध्या में कोई भी व्यक्ति नास्तिक, असत्यवादी, अल्पश्रुत, परनिन्दाप्रिय, असमर्थ और अशिक्षित नहीं था।

नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्रद:।
न दीन: क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन॥ ११ ॥

उस नगर में वेद के छहों अङ्गों को न जाननेवाला, व्रतहीन, सहस्त्रों से कम दान देनेवाला, दीन, पागल अथवा दुखी कोई नहीं था।

दीर्घायुषो नरा:सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिता:।
सहिता: पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभि: पुरोत्तमे॥ १२ ॥

अयोध्यावासी सभी जन दीर्घायुवाले, धर्म और सत्य का आश्रय लेनेवाले, पुत्र-पौत्र और स्त्रियों से भरे-पूरे थे।

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्या: क्षत्रमनुव्रता:।
शूद्रा: स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिण: ॥ १३ ॥

वहाँ के क्षत्रियगण ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुकूल चलनेवाले, वैश्य क्षत्रियों के अनुवर्ती और शूद्र अपने धर्म में लगे हुए तीनों वर्णों की सेवा करनेवाले थे।

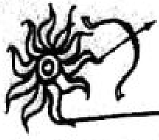
न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यप:।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुत:॥

—छा० उ० ५।११।५

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई कंजूस नहीं है, कोई शराबी नहीं है, कोई अग्निहोत्र न करनेवाला नहीं है, कोई मूर्ख नहीं है, कोई व्यभिचारी नहीं है फिर भला व्यभिचारिणी तो हो ही कैसे करती है?

१. 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त ने इसका अनुवाद यूँ किया है—

स्वस्थ शिक्षित शिष्ट उद्योगी सभी।
बाह्य भोगी आन्तरिक योगी सभी॥



पञ्चमः सर्गः (५)

महाराज दशरथ का मन्त्रिमण्डल—

तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः।
मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहिते रताः॥ १॥

इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न महाराज दशरथ के अमात्य सर्वगुण-सम्पन्न, विचार में निपुण, इशारों पर काम करनेवाले और महाराज की सदा भलाई चाहनेवाले थे।

अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः।
शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः॥ २॥

महाराज दशरथ के मन्त्रिमण्डल में आठ[1] अमात्य थे। वे सब अत्यन्त यशस्वी, ईमानदार और सदा राजकार्य में निरत रहनेवाले थे।

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्॥ ३॥

वे आठ मन्त्री थे—१. धृष्टि २. जयन्त ३. विजय ४. सिद्धार्थ ५. अर्थसाधक ६. अशोक ७. मन्त्रपाल और ८. सुमन्त्र।

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे॥ ४॥

इनके अतिरिक्त ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेव दो प्रधान ऋत्विज् तथा कुछ और ऋषि भी मन्त्री के रूप में थे।

विद्याविनीता ह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः।
श्रीमन्तश्च महात्मानः शास्त्रज्ञा दृढविक्रमाः॥ ५॥

ये सब मन्त्री विद्या-विनय-सम्पन्न, लज्जाशील, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, लक्ष्मी-सम्पन्न, महात्मा, शास्त्र के जाननेवाले और बड़े पराक्रमी थे।

तेजः क्षमायशः प्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः।
क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः॥ ६॥

वे बड़े तेजस्वी, क्षमाशील, यशस्वी, हँसकर बोलनेवाले थे। वे काम, क्रोध और लोभ के वश होकर भी कभी झूठ न बोलनेवाले थे।

तेषामविदितं किञ्चित्स्वेषु नास्ति परेषु वा।
क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम्॥ ७॥

उन मन्त्रियों के लिए अपने राज्य में अथवा दूसरे राज्य में कोई भी किया गया या किया जानेवाला कार्य अविदित नहीं था, क्योंकि वे चरों द्वारा सब वृत्तान्त जानते रहते थे।

कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः।
प्राप्तकालं यथादण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि॥ ८॥

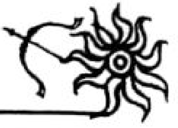
वे सब व्यवहार-कुशल, अपने विभागों की पूर्ण जानकारी रखनेवाले और अन्याय करने पर अपने पुत्रों को भी दण्ड देनेवाले थे।

ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः।
उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुंधराम्॥ ९॥

ऐसे गुणी अमात्यों से युक्त, पाप-रहित महाराज दशरथ ने पृथिवी का पालन किया।

---

१. यह मन्त्रिमण्डल मनु महाराज के अनुसार है—
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।
—मनु० ७।५४
परीक्षित किये हुए सात या आठ मन्त्री नियुक्त करे।



❮ षष्ठः सर्गः ❯ (६)

महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ—

तस्य चैवं प्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः।
सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः॥ १॥

ऐसे प्रभावशाली, धर्मज्ञ, महात्मा, पुत्र के लिए पीड़ित, महाराज दशरथ के वंश को चलानेवाला कोई पुत्र नहीं था।

चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः।
सुतार्थं वै पुत्रयागेन किमर्थं न यजाम्यहम्॥ २॥

पुत्रोत्पत्ति का उपाय सोचते हुए उन्हें ध्यान आया कि पुत्र-प्राप्ति के लिए मैं पुत्रेष्टि यज्ञ क्यों न करूँ?

अमात्यांश्चाब्रवीद्राजा निश्चितां तु कृत्वा मतिम्।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्॥ ३॥

यज्ञ करने का निश्चय कर महाराज दशरथ ने मन्त्रियों को सरयू के तट पर यज्ञभूमि ठीक करने का आदेश दिया।

नापराधो भवेत् कष्टो यद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे।
छिद्रं हि मृगयन्ते स्म विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः॥ ४॥

उन्होंने कहा—यह ध्यान रखा जाये कि यज्ञ की विधि पूरी करने में न तो कोई अपराध हो और न किसी को कष्ट दिया जाये, क्योंकि ऐसे यज्ञों में ब्राह्मणरूप में राक्षस लोग विघ्न खोजा करते हैं।

विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्त्ता विनश्यति।
तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते॥ ५॥

विधिहीन यज्ञ करनेवाला शीघ्र नष्ट हो जाता है, अतः ऐसा उपाय कीजिए जिससे यह यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त हो।

अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा।
अवज्ञया कृतं हन्याद्दातारं नात्र संशयः॥ ६॥

देखना, किसी को हँसी-दिल्लगी में भी अनादर से कोई वस्तु मत देना, क्योंकि अनादर करके देनेवाले दाता का नाश हो जाता है।

इत्युक्त्वा नृपशार्दूलः सचिवान्समुपस्थितान्।
विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः॥ ७॥

यह कह और वहाँ उपस्थित मन्त्रियों को विदा कर नृपश्रेष्ठ, महा बुद्धिमान्, महाराज दशरथ रनिवास में चले गये।

ततः स गत्वा ताः पत्नीर्नरेन्द्रो हृदयप्रियाः।
उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येऽहं सुतकारणात्॥ ८॥

घर जाकर नृपश्रेष्ठ दशरथ ने प्राणप्रिया अपनी पत्नियों से कहा—मैं पुत्रोत्पत्ति के लिए यज्ञ करूँगा, तुम भी यज्ञ की दीक्षा लो।

तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम्।
मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये॥ ९॥

महाराज के मुख से इस सुखदायी संवाद को सुनकर रानियों के मुखकमल ऐसे सुशोभित हो गये जैसे वसन्तकाल में कमल-पुष्प शोभा को प्राप्त होते हैं।

❮ सप्तमः सर्गः ❯ (७)

एतत् श्रुत्वा रह सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
ऋष्यशृङ्गस्तु तेजस्वी पुत्रांस्तव विधास्यति॥ १॥

यज्ञ की चर्चा सुन सुमन्त्र ने एकान्त में महाराज दशरथ से कहा कि तेजस्वी ऋष्यशृङ्ग आपको निश्चय ही पुत्र प्रदान करेंगे।

स त्वं पुरुषशार्दूल तमानय सुसत्कृतम्।
स्वयमेव महाराज गत्वा सबलवाहनः॥ २॥

हे पुरुषसिंह! आप सेना और वाहनोंसहित स्वयं वहाँ जाकर उन्हें आदरपूर्वक यहाँ लिवा लाइए।

सुमन्त्रस्य वचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथोऽभवत्।
सान्तः पुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः ॥ ३ ॥

सुमन्त्र का वचन सुन महाराज दशरथ बड़े प्रसन्न हुए और रानियों और मन्त्रियोंसहित उस स्थान के लिए प्रस्थान किया, जहाँ ऋष्यशृङ्ग रहते थे।

आसाद्य तं द्विजश्रेष्ठं रोमपादसमीपगम्।
ऋषिपुत्रं ददर्शाथो दीप्यमानमिवानलम् ॥ ४ ॥

वहाँ पहुँचकर महाराज दशरथ ने अग्नि के समान तेजस्वी द्विजों में श्रेष्ठ, ऋषिकुमार ऋष्यशृङ्ग को रोमपाद के समीप बैठे देखा।

ततो राजा यथान्यायं पूजां चक्रे विशेषतः।
सखित्वात्तस्य वै राज्ञः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ५ ॥

रोमपाद ने मित्रधर्म से प्रेरित हो प्रसन्नता के साथ महाराज दशरथ का विधिपूर्वक आदर-सत्कार किया।

रोमपादेन चाख्यातमृषिपुत्राय धीमते ।
सख्यं सम्बन्धकं चैव तदा तं प्रत्यपूजयत् ॥ ६ ॥

बुद्धिमान् शृङ्ग से रोमपाद ने दशरथजी के साथ अपनी मैत्री होने का वृत्तान्त सुनाया जिसे सुन ऋष्यशृङ्ग ने भी दशरथजी की प्रशंसा की।

एवं सुसत्कृतस्तेन सहोषित्वा नरर्षभः।
सप्ताष्टदिवसान्राजा राजानमिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥

इस प्रकार सत्कारपूर्वक सात-आठ दिन वहाँ रहकर महाराज दशरथ रोमपाद से बोले—

शान्ता तव सुता राजन्सह भर्त्रा विशांपते।
मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ ८ ॥

हे राजन्! आपकी पुत्री शान्ता अपने पति के साथ मेरी नगरी में चले, क्योंकि एक बड़ा कार्य उपस्थित हुआ है।

तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः।
उवाच वचनं विप्रं गच्छ त्वं सह भार्यया ॥ ९ ॥

यह सुन, रोमपाद बोले, 'बहुत अच्छा', फिर उन्होंने ऋष्यशृङ्ग से कहा कि आप अपनी पत्नी-सहित महाराज के साथ जाइए।

ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा।
स नृपेणाभ्यनुज्ञातः प्रययौ सह भार्यया ॥ १० ॥

ऋष्यशृङ्ग जाने को तैयार हो गये और राजा रोमपाद की आज्ञानुसार अपनी पत्नीसहित दशरथजी के साथ चल पड़े।

ततः सुहृदमापृच्छ्य प्रस्थितो रघुनन्दनः।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने तस्योपवाहनात् ॥ ११ ॥

तब महाराज दशरथ अपने मित्र रोमपाद से विदा हो प्रस्थानित हुए। मुनिवर शृङ्ग के आगमन से दशरथजी ने अपने को कृतकृत्य माना।

अन्तःपुराणि सर्वाणि शान्तां दृष्ट्वा तथागतम्।
सह भर्त्रा विशालाक्षीं प्रीत्यानन्दमुपागमन् ॥ १२ ॥

ऋषि-प्रवर के साथ उनकी पत्नी विशालाक्षी शान्ता को आई हुई देख अन्तःपुर-वासिनी सभी रानियों ने बड़ा आनन्द मनाया।

पूज्यमाना च ताभिः सा राज्ञा चैव विशेषतः।
उवास तत्र सुखिता कंचित्कालं सहद्विजः ॥ १३ ॥

रानियों और विशेषकर महाराज दशरथ द्वारा सत्कृत होकर शान्ता अपने पति ऋष्यिशृङ्ग के साथ रनिवास में कुछ दिनों तक सुख से रही।

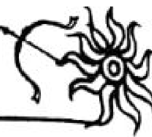
❮ अष्टमः सर्गः ❯ (८)

महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ—

ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित्सुमनोहरे।
वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत् ॥ १ ॥

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर जब वसन्त ऋतु का आगमन हुआ, तब महाराज की यज्ञ करने की इच्छा हुई।

ततोऽब्रवीदृष्यशृङ्गं राजा दशरथस्तदा।
कुलस्य वर्धनं त्वं तु कर्तुमर्हसि सुव्रत ॥ २ ॥



यज्ञ का निश्चय कर वे ऋष्यशृङ्ग से बोले—हे सुव्रत! अब आप मेरे कुल की वृद्धि के लिए उपाय कीजिए।

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किंचिदिदमुत्तरम्।
लब्धसंज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत्॥ ३॥

मेधावी एवं वेदज्ञ ऋष्यशृङ्ग कुछ समय विचार कर, स्वस्थचित्त हो महाराज से बोले—

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि[1] प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥ ४॥

हे राजन्! मैं आपके लिए अथर्ववेद में कहे हुए मन्त्रों द्वारा विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊँगा। इसके विधिपूर्वक सम्पादन होने से आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा।

ततः प्राक्रमदिष्टिं तां पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
जुहावाग्नौ च तेजस्वी मन्त्रदृष्टेन कर्मणा॥ ५॥

तदनन्तर तेजस्वी ऋषि ने पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किया और विधिवत् मन्त्र पढ़कर आहुति देना आरम्भ किया।

अथ वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभाम्।
तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम्॥ ६॥
दिव्यपायससम्पूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम्।
प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां समवेक्ष्याब्रवीदिदम्॥ ७॥

थोड़ी देर के पश्चात् महाराज दशरथ के आहवनीय अग्निकुण्ड से अतुल, प्रभायुक्त, स्वर्ण से निर्मित और चाँदी के पात्र से ढके, दिव्य खीर से पूर्ण पात्र को, प्यारी पत्नी के समान दोनों हाथों में लिये हुए ऋष्यशृङ्ग ने महाराज दशरथ की ओर देखकर कहा—

इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम्।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम्॥ ८॥

हे नरशार्दूल! यह खीर विद्वानों द्वारा यज्ञाग्नि में निर्मित की गई है। यह पुत्रोत्पादक प्रशस्त और आरोग्यवर्धक है। इसे आप लीजिए।

भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान्यदर्थं यजसे नृप॥ ९॥

इसे आप अपनी अनुरूप पत्नियों को खिलाइए। इसके प्रभाव से आपको पुत्रों की प्राप्ति होगी जिसके लिए आपने यह यज्ञ किया है।

तथेति नृपतिः प्रीतः शिरसा प्रतिगृह्यताम्।
पात्रीं देवान्नसम्पूर्णां देवदत्तां हिरण्मयीम्॥ १०॥

'बहुत अच्छा'—ऐसा कह कर और प्रसन्न हो राजा दशरथ ने विद्वानों द्वारा निर्मित एवं प्रदत्त खीर से भरे स्वर्ण-पात्र को सिर झुकाकर ग्रहण किया।

सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत्।
पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः॥ ११॥

तदनन्तर महाराज दशरथ रनिवास में जाकर कौसल्याजी से बोले—लो यह खीर है, इससे तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी।

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः॥ १२॥

ऐसा कह दशरथजी ने आधी खीर कौसल्या को दी और आधी की आधी, अर्थात् चौथा भाग सुमित्रा को दिया।

कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्॥ १३॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक्॥ १४॥

तदनन्तर पुत्रोत्पत्ति के लिए जो पहली आधी

---

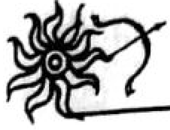
१. अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र में पुत्रेष्टि का संकेत मिलता है—

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि॥

—अथर्व० ६।११।१

शमी (छौंकड़) वृक्ष पर जो पीपल उगता है वह पुत्र उत्पन्न करने का साधन है। यह पुत्र-प्राप्ति का उत्तम साधन है। वह हम स्त्रियों को देते हैं।

अथर्ववेद में इसी प्रकार के और भी बहुत-से प्रयोग हैं।



खीर बची थी वह कैकेयी को दी, फिर कुछ सोचकर महामति दशरथ ने कैकेयी को दी खीर का चौथा भाग पुनः सुमित्रा को दे दिया। इस प्रकार राजा ने यह खीर रानियों को पृथक्-पृथक् बाँट दी।

ताश्चैवं पायसं प्राप्य नरेन्द्रस्योत्तमस्त्रियः।
सम्मानं मेनिरे सर्वाः प्रहर्षोदितचेतसः॥ १५॥

महाराज दशरथ की वे सुन्दर स्त्रियाँ उस खीर को खाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्होंने अपने-आपको भाग्यवती माना।

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो
महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसो-
ऽचिरेण गर्भान्प्रतिपेदिरे तदा॥ १६॥

तदनन्तर तीनों उत्तमाङ्गनाओं ने महाराज द्वारा पृथक्-पृथक् प्रदत्त खीर को खाकर अग्नि और सूर्य के समान तेजवाले गर्भों को धारण किया।

नवमः सर्गः (९)

रामादि जन्म एवं बाल्यकाल—

निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिन्राज्ञा वै पृथिवीश्वराः।
यथार्हं पूजितास्तेन मुदिताः प्रययुर्देशान्॥ १॥

यज्ञ के समाप्त होने पर बाहर से आये राजा लोग दशरथजी द्वारा सत्कृत हो अपने देशों को लौट गये।

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यशृङ्गः सुपूजितः।
अनुगम्यमानो राज्ञा च सानुयात्रेण धीमता॥ २॥

ऋष्यशृङ्ग भी अपनी पत्नी शान्ता सहित महाराज से विदा हो अपने स्थान को चल दिये। दशरथजी उन्हें पहुँचाने के लिए कुछ दूर उनके साथ गये।

एवं विसृज्य तान् सर्वान्प्रविवेश पुरीं श्रीमान्।
उवास सुखितस्तत्र पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन्॥ ३॥

इस प्रकार यज्ञ में आये सब महानुभावों को विदा कर दशरथजी ने नगर में प्रवेश किया और सन्तानोत्पत्ति की प्रतीक्षा करते हुए सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥ ४॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
गृहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।
कौसल्या जनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥ ५॥

यज्ञ-समाप्ति के पश्चात् छह ऋतुएँ व्यतीत होने पर बारहवें मास में चैत्र की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में जब कि पाँच ग्रह (सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर) अपने उच्च स्थान में स्थित थे। कर्क लग्न में तथा चन्द्रमा के साथ बृहस्पति के उदय होने पर कौसल्याजी के गर्भ से श्रीराम का जन्म हुआ।

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ॥ ६॥

सत्य-पराक्रमी भरत कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुए तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को उत्पन्न किया।

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः।
सार्पे जातौ च सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ॥ ७॥

भरतजी का जन्म पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में हुआ। आश्लेषा नक्षत्र और कर्कलग्न में सूर्योदय होने पर लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥ ८॥

इनके जन्मावसर पर सामगान-कर्त्ताओं ने मधुर गान किया। अप्सराएँ नाचने लगीं, उत्तम जाति के नगाड़े बजाये जाने लगे तथा ऊपर से फूल बरसाये गये।

उत्सवश्च महानासीदयोध्यायं जनाकुलाः।
रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तकसंकुलाः।
गायनैश्च विराविण्यो वादकैश्च तथाऽपरैः॥ ९॥



उस समय अयोध्या में एक उत्सव मनाया गया जिसमें स्त्री और पुरुषों की अपार भीड़ थी। मार्ग स्त्री-पुरुषों से भरपूर थे।

प्रदेयाँश्च ददौ राजा सूतमागधवन्दिनाम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः॥ १०॥

इस उत्सव में महाराज दशरथ ने सूत, मागध और बन्दीगणों को पारितोषिक दिये तथा ब्राह्मणों को धन और सहस्रों गौएँ प्रदान कीं।

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाऽकरोत्।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयीसुतम्॥ ११॥

ग्यारह दिन बीत जाने पर चारों बालकों का नामकरण संस्कार किया गया। कौसल्या के पुत्र का नाम राम और कैकेयी के पुत्र का नाम भरत रखा गया।

सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा॥ १२॥

सुमित्रा के पुत्रों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखा गया। यह नामकरण-संस्कार महर्षि वसिष्ठजी द्वारा सम्पन्न कराया गया।

ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि।
अददद् ब्राह्मणानां च रत्नौघममितं बहु॥ १३॥

इस दिन महाराज ने ब्राह्मणों और पुरवासियों को भोजन कराया और ब्राह्मणों को बहुमूल्य रत्न प्रदान किये।

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्॥ १४॥

इन सब बालकों के निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि संस्कार भी महाराज ने यथा-समय कराये।

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः।
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः॥ १५॥

चारों ही राजकुमार वेद के जाननेवाले, शूरवीर, परोपकारी, ज्ञानी और सर्वगुण-सम्पन्न थे।

तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।
इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः॥ १६॥

उनमें भी महातेजस्वी और सत्यपराक्रमी श्रीराम निर्मल चन्द्रमा की भाँति सबके प्यारे थे।

बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः॥ १७॥

शोभा को बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी बाल्यकाल से ही लोकहितैषी श्रीराम के अतिप्रिय थे।

सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः।
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिः प्राण इवापरः॥ १८॥

कान्ति-सम्पन्न लक्ष्मणजी श्रीराम को अपने शरीर से भी बढ़कर मानते थे। वे राम के बहिर्गत दूसरे प्राण ही थे।

न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना॥ १९॥

श्रीराम को लक्ष्मण के बिना नींद भी नहीं आती थी और लक्ष्मण को दिये बिना वे कभी कोई मीठा पदार्थ भी नहीं खाते थे।

यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः।
तदैवं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्॥ २०॥

जब श्रीराम घोड़े पर सवार हो शिकार खेलने के लिए जाते तो लक्ष्मणजी भी धनुष हाथ में ले उनके पीछे हो लिया करते थे।

भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः।
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः॥ २१॥

इसी प्रकार शत्रुघ्न भरत को भरत शत्रुघ्न को प्राणों से भी अधिक प्रिय था।

ते यदा ज्ञानसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः॥ २२॥
तेषामेवंप्रभावानां सर्वेषां दीप्ततेजसाम्।
पिता दशरथो हृष्टो ब्रह्मा लोकाधिपो यथा॥ २३॥

जब वे चारों राजकुमार ज्ञान-सम्पन्न, सब गुणों से युक्त, लज्जाशील, कीर्तिमान्, सर्व विषयों में निष्णात और दीर्घदर्शी हुए तब उनके प्रभाव और तेज को देखकर दशरथ ऐसे प्रसन्न हुए जैसे ब्रह्माजी लोकपालों

से।

ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः।
पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः॥ २४॥

वे नरसिंह भी वेदाध्ययन में रत, पितृ-सेवा में तत्पर और धनुर्विद्या में अति प्रवीण हो गये।

❮ दशमः सर्गः ❯ (१०)

विश्वामित्रजी का आगमन—

अथ राजा दशरथो राजकार्यप्रसङ्गतः।
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायश्च मन्त्रिणः॥ १॥

एक दिन महाराज दशरथ अपने उपाध्याय और मन्त्रियों के साथ कुछ राज्य सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे।

तस्य चिन्तमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः।
अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः॥ २॥

वे परामर्श कर ही रहे थे कि इसी बीच में महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रजी वहाँ पधारे।

स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह।
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम्॥ ३॥

महाराज से मिलने की अभिलाषा से वे द्वारपाल से बोले कि तुम शीघ्र जाकर महाराज को सूचना दो कि गाधिपुत्र विश्वामित्र आये हैं।

ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा।
प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा॥ ४॥

उन्होंने राजभवन में जाकर विश्वामित्रजी के आगमन का संवाद महाराज दशरथ से निवेदन किया।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः समाहितः।
प्रत्युजगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः॥ ५॥

द्वारपालों से विश्वामित्र का आगमन सुनकर दशरथजी प्रसन्न हो और वसिष्ठजी को साथ ले विश्वामित्रजी से मिलने के लिए उसी प्रकर चले जिस प्रकर इन्द्र ब्रह्माजी से मिलने जाते हैं।

स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम्।
प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत्॥ ६॥

तेज से देदीप्यमान और कठोर नियमों का पालन करनेवाले तपस्वी विश्वामित्रजी को देख राजा दशरथ ने प्रसन्न हो उन्हें अर्घ्य अर्पण किया।

स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम्॥ ७॥

विश्वामित्रजी ने शास्त्रोक्त विधि से राजा के अर्घ्य को ग्रहणकर उनका कुशल-मङ्गल पूछा।

पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च।
कुशलं कौशिको राज्ञः पर्यपृच्छत्सुधार्मिकः॥ ८॥

फिर विश्वामित्रजी ने महाराज के नगर, कोश, राज्य, कुटुम्ब और इष्टमित्रों की कुशलता पूछी।

वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुङ्गवः।
ऋषींश्च तान्यथान्यायं महाभाग उवाच ह॥ ९॥

फिर विश्वामित्रजी ने वसिष्ठजी की कुशल पूछी। तदनन्तर अन्य महाभाग वामदेव आदि सब ऋषियों से यथाक्रम कुशल-मङ्गल पूछा।

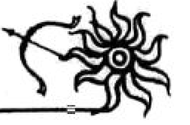
ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम्।
विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्च यथार्हतः॥ १०॥

विश्वामित्रजी से सत्कृत वे सब प्रसन्न मन महाराज के सभा-भवन में गये और यथोचित आसनों पर बैठ गये।

अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम्।
उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन्॥ ११॥

तब प्रसन्नचित एवं उदार राजा दशरथ महामुनि विश्वामित्रजी से बोले—

यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके।
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै॥ १२॥



प्रणष्टस्य यथालाभो यथा हर्षो महोदयः।
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने॥
कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः॥ १३॥

हे महर्षे! आपके आगमन से मुझे वैसा ही हर्ष हुआ है जैसा कि अमृत के मिलने से, सूखी खेती को वर्षा से, अपुत्रक को पुत्र होने से, नष्ट हुई वस्तु के मिलने से और महोत्सवों में जो आनन्द होता है वैसा ही मैं आपके आगमन को समझता हूँ। मैं आपका स्वागत करता हूँ। कहिए आपके दर्शनों से आनन्दित मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ।

पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्दिष्टया प्राप्तोऽसि मानद।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्॥ १४॥

ब्रह्मन्! आप दान के पात्र हैं। मेरे अहोभाग्य हैं जो आप यहाँ पधारे हैं। आपने अपने शुभागमन से मुझे मान दिया है। आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा जीवन सुजीवन हो गया।

ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति।
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थपरिवृद्धये॥ १५॥

अब आप बताइए, आप किस कार्य के लिए यहाँ पधारे हैं। मैं चाहता हूँ कि आपकी सेवा करके मैं अनुगृहीत होऊँ।

कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत।
कर्त्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान्मम॥ १६॥

हे कौशिक! आप अपने कार्य के बारे में सन्देह मत कीजिए। मैं आपके सब कार्य पूर्ण करूँगा, क्योंकि आप मेरे पूज्य हैं।

➤ एकादशः सर्गः ➤ (११)

विश्वामित्र द्वारा राम की याचना और दशरथ का मोह—

तत् श्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम्।
हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥ १॥

राजाओं में श्रेष्ठ दशरथ के अद्भुत और विस्तृत वचनों को सुन महातेजस्वी विश्वामित्र हर्षित होकर बोले—

सदृशं राजशार्दूल तवैव भुवि नान्यतः।
महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः॥ २॥

हे नृपशार्दूल! ऐसे वचन आप जैसे इक्ष्वाकुवंशी और वसिष्ठजी के यजमान को छोड़कर और कौन कहेगा।

यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम्।
कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः॥ ३॥

हे राजशार्दूल! अब मैं अपने हृदय की बात कहता हूँ, उसके अनुसार कार्य कर आप अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कीजिए।

अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ।
तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ॥ ४॥

हे नरश्रेष्ठ! आजकल मैं यज्ञ-सिद्धि के लिए दीक्षा धारण किये हुए हूँ। उस यज्ञ में दो राक्षस विघ्न उपस्थित किया करते हैं।

स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम्।
काकपक्षधरं शूरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि॥ ५॥

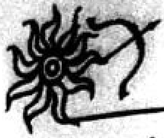
हे नृपश्रेष्ठ! सत्यपराक्रमी, काकपक्षधारी और शूरवीर अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को मुझे दे दीजिए।

शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा।
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने॥ ६॥

मेरे द्वारा रक्षित श्रीराम अपने दिव्य तेज से न केवल मेरे यज्ञ की ही रक्षा करेंगे, अपितु राक्षसों को भी नष्ट कर देंगे।

श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः।
त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति॥ ७॥

मैं इसके कल्याण के लिए ऐसी अनेक विधियाँ



और क्रियाएँ बताऊँगा जिससे इसकी ख्याति तीनों लोकों (जल, स्थल, नभ) में हो जायेगी।

यदि ते धर्मलाभं च यशश्च परमं भुवि।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि॥ ८॥

यदि आप संसार में अपने पुण्य और यश को स्थिर रखना चाहते हैं तो श्रीराम को मुझे दे दीजिए।

इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः।
विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः॥ ९॥

धर्मात्मा, महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रजी धर्मार्थ-युक्त ऐसा वचन कहकर चुप हो गये।

तत् श्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम्।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत्॥ १०॥

विश्वामित्र के कथन को सुन दशरथ मुहूर्त भर को मूर्छित हो गये तदनन्तर सचेत होने पर वे बोले—

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥ ११॥

महर्षे! कमलनेत्र श्रीराम तो अभी पन्द्रह ही वर्ष का है। मैं उसे किसी भी प्रकार राक्षसों से लड़ने योग्य नहीं समझता।

इयमक्षौहिणी सेना यस्याहं पतिरीश्वरः।
अनया सहितो गत्वा योद्धाऽहं तैर्निशाचरैः॥ १२॥

मेरे पास जो अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं स्वामी हूँ इसे साथ ले जाकर मैं उन राक्षसों से युद्ध करूँगा।

इमे शूराश्च विक्रान्ता भृत्या मे ऽस्त्रविशारदाः।
योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि॥ १३॥

ये मेरे महापराक्रमी, शूरवीर, युद्ध-विद्या में प्रवीण, वेतन-भोगी योद्धा राक्षसों से युद्ध करने में समर्थ हैं। आप इन्हें ले जाइए, राम को मत ले जाइए।

अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि।
यावत्प्राणान्धरिष्यामि तावद्योत्स्ये निशाचरैः॥ १४॥

मैं स्वयं धनुषबाण हाथ में लेकर युद्धभूमि में खड़े होकर जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, आपके यज्ञ की रक्षा करता हुआ राक्षसों से युद्ध करूँगा।

अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि।
बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम्॥ १५॥
न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः।
न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि ते ध्रुवम्॥ १६॥

मैं स्वयं वहाँ चलता हूँ। आप राम को न ले जाइए, क्योंकि श्रीराम अभी बालक है। वह न तो अनुभवी है और न शत्रु के बलाबल को समझ सकता है और न युद्धविद्या में ही कुशल है। वह राक्षसों से लड़ने योग्य नहीं है, क्योंकि राक्षस कपटयुद्ध करनेवाले होते हैं।

विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे।
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि॥ १७॥

राम के वियोग में मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता, अतः हे मुनिवर! आप श्रीराम को न ले जाइए।

यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत।
चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय॥ १८॥

यदि आप राम को ही ले जाना चाहते हैं तो मुझे और चतुरंगिणी (रथ, हाथी, घोड़ा, पैदल) सेना को भी साथ ले चलिए।

षष्टिर्वर्षसहस्राणि[१] जातस्य मम कौशिक।
दुःखेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि॥ १९॥

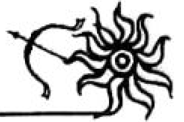
हे विश्वामित्र! साठ वर्ष की अवस्था में बड़े कष्ट उठाकर मैंने इसे प्राप्त किया है, अतः आप राम को न ले जाइए।

चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम।
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने[२] च न रामं नेतुमर्हसि॥ २०॥

चारों राजकुमारों में मेरा परम स्नेह राम के ही

१. सहस्र का अर्थ एक भी होता है, अतः सहस्र वर्ष का अर्थ हुआ एक वर्ष और ''षष्टिर्वर्षसहस्राणि'' का अर्थ हुआ साठ वर्ष।

२. मनुजी ने ज्येष्ठ पुत्र को ही धर्मज माना है—
स एव धर्मजः पुत्रः कामजातानितरान्विदुः।
—मनु० ९।१०७
ज्येष्ठ पुत्र ही धर्मज है, अन्य तो कामज होते हैं।



ऊपर है। वह धर्मप्रधान और ज्येष्ठ है, अतः आप श्रीराम को न ले जाइए।

किं वीर्या राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च के च ते।
कथं प्रमाणाः के चैतान्रक्षन्ति मुनिपुङ्गव॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वे राक्षस कितने पराक्रमी हैं, किसके पुत्र हैं, आकार-प्रकार में कैसे हैं और उनके सहायक कौन-कौन हैं?

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत।
पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः॥ २२॥
तेन संचोदितौ द्वौ तु राक्षसौ सुमहाबलौ।
मारीचश्च सुबाहुश्च यज्ञविघ्नं करिष्यतः॥ २३॥

महाराज के वचन सुन विश्वामित्रजी बोले—हे राजन्! महर्षि पुलस्त्य के वंश में उत्पन्न रावण नाम का एक राक्षस है। उसी की प्रेरणा से बड़े बलवान् दो राक्षस—मारीच और सुबाहु यज्ञों में विघ्न डाला करते हैं।

इत्युक्तो मुनिना तेन राजोवाच मुनिं तदा।
नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः॥ २४॥

विश्वामित्र के वचनों को सुन दशरथ ने कहा—उस दुरात्मा रावण का सामना तो मैं भी नहीं कर सकता।

स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ कुरुष्व मम पुत्रके।
बालं मे तनयं ब्रह्मन्नैव दास्यामि पुत्रकम्॥ २५॥

हे धर्मज्ञ! हे ब्रह्मन्! आप मुझ पर और मेरे बच्चे पर कृपा करें। मैं अपने बाल-पुत्र को कदापि नहीं दूँगा।

➤ द्वादशः सर्गः ➤ (१२)

विश्वामित्र जी का क्रोध और वसिष्ठ का दशरथ को समझाना—

तत् श्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम्।
समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम्॥ १॥

दशरथ के पुत्रस्नेह से सिक्त वचनों को सुन विश्वामित्रजी क्रुद्ध होकरे बोले—

पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्वं प्रतिज्ञां हातुमिच्छयसि।
राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः॥ २॥

हे राजन्! आप रघुवंश में उत्पन्न होकर भी कार्य करने की प्रतिज्ञा करके उस प्रतिज्ञा को तोड़ना चाहते हैं। यह बात रघुवंशियों[1] के लिए विपरीत है और कुल-परम्परा के प्रतिकूल है।

यदिदं ते क्षमं राजन् गमिष्यामि यथागतम्।
मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सबान्धवः॥ ३॥

राजन्! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मैं चला। आप इसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करते हुए बन्धु-बान्धवों सहित प्रसन्न रहिए।

तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः।
नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

विश्वामित्र के कुपित होने पर व्रत-परायण एवं धैर्यशील वसिष्ठजी ने दशरथ से कहा—

इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः।
धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि॥ ५॥

महाराज! आप इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न साक्षात् धर्म की दूसरी मूर्ति हैं। आप श्रीमान्, धैर्यवान् और श्रेष्ठ व्रतों को धारण करनेवाले हैं, अतः आप धर्म का त्याग न करें।

त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि॥ ६॥

आप तीनों लोकों में धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं, अतः

---

१. रघुकुल की परम्परा के सम्बन्ध में तुलसीदासजी ने मानो इसी श्लोक को अपने समक्ष रख कर कहा है—

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाये पर वचन न जाई॥



आप अपने धर्म की रक्षा कीजिए, अधर्म का आचरण मत कीजिए।

प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः।
इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय॥ ७॥

हे राजन्! जो प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ण नहीं करता उसके इष्ट[1] और पूर्त[2] का फल नष्ट हो जाता है, अतः आप राम को भेज दें।

कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः।
गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा॥ ८॥

श्रीराम अस्त्रविद्या में कुशल हों या न हों, विश्वामित्र से रक्षित राम का राक्षस कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। अरे! यदि अग्निचक्र अमृत का रक्षक हो तो क्या कोई उसे पा सकता है?

महावीर्यो महातेजा विश्वामित्रो महायशाः।
न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि॥ ९॥

विश्वामित्रजी महापराक्रमी, महातेजस्वी और महायशस्वी हैं, अतः इनके साथ राम को भेजने में तनिक भी संदेह न कीजिए।

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते॥ १०॥

विश्वामित्रजी स्वयं उन राक्षसों को मारने में समर्थ हैं। ये तो आपके पुत्र के हित के लिए ही उसे आपसे माँगने आये हैं।

◀ त्रयोदशः सर्गः ▶ (१३)

राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ प्रस्थान—

तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम्।
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम्॥ १॥

वसिष्ठजी के समझाने पर दशरथजी ने राम और लक्ष्मण[3] को बुलवाया।

कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च।
पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम्॥ २॥

भेजते समय माता और पिता दशरथ ने गमन-कालिक स्वस्तिवाचन[4] किया तथा पुरोहित वसिष्ठ ने मङ्गल सूक्तों से राम को अभिमन्त्रित किया।

स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा।
ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना॥ ३॥

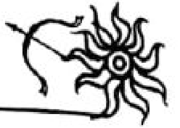
महाराज दशरथ ने पुत्रों का सिर सूँघकर और प्रसन्नचित हो उन्हें विश्वामित्र को सौंप दिया।

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात्॥ ४॥

सबसे आगे विश्वामित्रजी थे, उनके पीछे यशस्वी रामचन्द्र और उनके पीछे धनुष हाथ में लिये काकपक्षधारी लक्ष्मणजी चले जाते थे।

---

१. **इष्ट**—अश्वमेधादि यज्ञ।
२. **पूर्त**—कुंआ, तालाब, बावड़ी आदि बनवाना।
३. यहाँ शंका उत्पन्न होती है कि विश्वामित्र ने तो केवल राम को माँगा था, उन्होंने लक्ष्मण का तो नाम भी नहीं लिया, फिर लक्ष्मण को राम के साथ क्यों भेजा गया। इसका उत्तर यह है कि उस परिवार में लक्ष्मण के बिना राम की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। जब दशरथ ने राम को भेजने का निश्चय किया तो लक्ष्मण को भी बुला भेजा, क्योंकि वे जानते थे कि लक्ष्मण श्रीराम के साथ अवश्य जायेगा।
महर्षि वाल्मीकि ने राम-लक्ष्मण का सम्बन्ध यूँ वर्णित किया है—
रामस्य दक्षिणो बाहुः नित्यं प्राणो बहिश्चरः।
—अरण्य० २२। १९
लक्ष्मण, राम के दक्षिणबाहु थे। वे राम के दूसरे प्राण के तुल्य थे जो राम के शरीर से बाहर रहकर कार्य करता था।
४. हम यहाँ एक मन्त्र देते हैं। जो अधिक देखना चाहें वे



अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे।
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥ ५॥

अयोध्या से डेढ़ योजन (साढ़े सात मील) दूर सरयू के दक्षिण तट पर पहुँच, विश्वामित्र श्रीराम से मधुर वाणी में बोले—

गृहाण वत्स सलिलं मा भूत्कालस्य पर्ययः।
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामति बलां तथा॥ ६॥

हे वत्स! जल्दी से आचमन कर लो और मन्त्र-समूहरूप बला और अतिबला नामक विद्या को ग्रहण करो।

न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः।
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः॥ ७॥

इनके प्रभाव से न तो तुम्हें थकावट होगी, न कभी ज्वर आयेगा, न रूप में विकार आयेगा। सुप्त अवस्था में अथवा असावधान अवस्था में भी राक्षस आपको दबा न सकेंगे।

न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन।
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत्सदृशस्तव॥ ८॥

हे राम! इस विद्या को ग्रहण करने पर सम्पूर्ण पृथिवी पर कोई भी तुम्हारे बाहुबल की समानता न कर पावेगा, पृथिवी पर ही क्या त्रिलोक में भी तुम्हारे समान कोई नहीं होगा।

न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये।
नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ॥ ९॥

इस विद्या को प्राप्त कर लेने पर हे निष्पाप! सौभाग्य, चतुरता, ज्ञान, बुद्धि से कार्य के निश्चय करने और प्रत्युत्तर देने में इस संसार में कोई भी तुम्हारी तुलना नहीं कर सकेगा।

बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ।
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम॥ १०॥

पुरुषोत्तम राम! सब विद्याओं की माता बला और अतिबला नाम विद्याओं के प्रभाव से भूख और प्यास भी तुम्हें व्याकुल न करेगी।

बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव।
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि॥ ११॥

हे राघव! इन दोनों विद्याओं के पढ़ लेने से तुम्हारा यश सम्पूर्ण संसार में फैल जायेगा।

ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः।
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः॥ १२॥

यह सुन प्रसन्नवदन राम ने आचमन कर तथा पवित्र हो आत्मस्वरूप के जाननेवाले विश्वामित्र से वे दोनों विद्याएँ ग्रहण कीं।

विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भूरिविक्रमः।
सहस्त्ररश्मिर्भगवाञ्शरदीव दिवाकरः॥ १३॥

उन विद्याओं को सीख लेने पर पराक्रमी श्रीराम उसी प्रकार सुशोभित हुए जैसे शरदऋतु में सूर्य शोभित होता है।

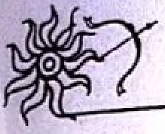
गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजे।
ऊषुस्तां रजनीं तीरे सरय्वां सुसुखं त्रयः॥ १४॥

इसके अनन्तर दोनों भाइयों ने गुरु के समान विश्वामित्र की चरण-सेवा आदि कर वह रात सरयू के तट पर विश्वामित्रजी के साथ आनन्द-पूर्वक बिताई।

महर्षि दयानन्दकृत 'संस्कार-विधि' का स्वस्तिवाचन प्रकरण देखें—

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते।
नात्रावखादो अस्ति वः॥ —ऋ० १।४१।४

हे सूर्य-समान सन्मार्गगामी नागरिको! इस संसार में सत्पथगामी के लिए मार्ग सुगम तथा कण्टक-रहित होता है। इस मार्ग में आपको कोई हानि नहीं है।



➤ चतुर्दशः सर्गः ➤ (१४)

शिवाश्रम में विश्राम—

प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः।
अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे॥ १॥

रात्रि व्यतीत होने पर विश्वामित्रजी सूखे पत्तों के बिछौनों पर सोये हुए राम-लक्ष्मण से बोले—

कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम्॥ २॥

हे कौसल्यानन्दन! नरशार्दूल राम! प्रातःकाल होने को है, उठो और प्रातः कृत्य (शौच, स्नान, सन्ध्या) आदि कर डालो।

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नृपात्मजौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम्॥ ३॥

दोनों राजकुमार परमोदार महर्षि के वचन सुनकर उठ बैठे, फिर स्नान और आचमन कर वे गायत्री का जप करने लगे।

कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम्।
अभिवाद्यातिसंहृष्टौ गमनायाभितस्थतुः॥ ४॥

अपने दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो दोनों राजकुमारों ने विश्वामित्रजी को प्रणाम किया और आगे चलने को तैयार हुए।

तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम्।
ददृशास्ते ततस्तत्र सरय्वाः सङ्गमे शुभे॥ ५॥

चलते-चलते वे उत्तम जलवाली गङ्गा नदी पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने गङ्गा और सरयू नदी का सङ्गम देखा।

तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम्।
बहुवर्षसहस्राणि तप्यतां परमं तपः॥ ६॥

उस सङ्गम-स्थल पर अनेक वर्षों से घोर तप में लगे हुए पवित्रात्मा ऋषियों का एक आश्रम था।

तं दृष्ट्वा परमप्रीतौ राघवौ पुण्यमाश्रमम्।
ऊचतुस्तं महात्मानं विश्वामित्रमिदं वचः॥ ७॥

उस पवित्राश्रम को देख राम और लक्ष्मण प्रसन्न हुए और महात्मा विश्वामित्रजी से बोले—

कस्यायमाश्रमः पुण्यः को न्वस्मिन्वसते पुमान्।
भगवञ्श्रोतुमिच्छावः परं कौतूहलं हि नौ॥ ८॥

भगवन्! यह पवित्र आश्रम किसका है? इस समय यहाँ कौन रहता है? हम दोनों इस आश्रम का वृत्तान्त सुनने के लिए उत्सुक हैं।

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः।
अब्रवीत् श्रूयतां राम शिवाश्रमस्त्वयं पुण्यः॥ ९॥

राजकुमारों का प्रश्न सुन विश्वामित्रजी मुस्करा कर बोले—हे राम! सुनो, यह पुण्याश्रम शिवजी का है।

इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन।
पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम्॥ १०॥

हे शुभदर्शन राम! आज की रात्रि हम यहीं व्यतीत

---

१. श्रीराम **'वेदाङ्गतत्त्वज्ञः'** (बाल० १। १४) वेद को जाननेवाले थे। वेद में दोनों समय सन्ध्या करने का विधान है—

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ —ऋ० १। १। ७५

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! ज्ञान-विज्ञान प्राप्ति के लिए हम प्रतिदिन सायं और प्रातः बुद्धि और कर्मों से आपको धारण करते हुए, नमस्कार करते हुए आपको प्राप्त होते हैं।

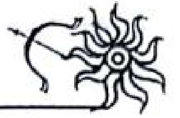
गायत्री मन्त्र निम्न है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। —यजुः० ३६। ३

श्रीराम इसी गायत्री का जप करते थे। हमें भी इसी का जप करना चाहिए। यही परम जप है—

सावित्र्यास्तु परं नास्ति।

—अत्रिः स्मृति १। ११



करेंगे और कल नदी पार कर आगे प्रस्थान करेंगे।

अभिगच्छामहे सर्वे शुचयः पुण्यमाश्रमम्।
स्नाताश्च कृतजप्याश्च हुतहव्या नरोत्तम॥ ११॥

हे राम! स्नान कर, पवित्र होकर, जप और यज्ञ से निवृत्त हो हम इस आश्रम में प्रवेश करेंगे।

तेषां संवदतां तत्र मुनयो हर्षमागमन्।
अर्घ्यं पाद्यं तथाऽऽतिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे॥ १२॥

उन्हें वहाँ वार्त्तालाप करते देख ऋषि लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने विश्वामित्रजी को अर्घ्य और पाद्य अर्पण कर उनका आतिथ्य किया।

तत्र वासिभिरानीता मुनिभिः सुव्रतैः सह।
न्यवसन्सुसुखं तत्र कामाश्रमपदे तदा॥ १३॥
कथाभिरभिरामाभिरभिरामौ नृपात्मजौ।
रमयामास धर्मात्मा कौशिको मुनिपुङ्गवः॥ १४॥

सुव्रतधारी आश्रमवासी मुनि उन तीनों को आश्रम में ले आये। तीनों ने सुखपूर्वक उस कामाश्रम (शिवाश्रम) में वास किया। महर्षि विश्वामित्र ने अनेक मनोरञ्जक कथाएँ सुनाकर राम-लक्ष्मण का मनोरञ्जन किया।

❮ पञ्चदशः सर्गः ❯ (१५)

ताटका-वध की प्रेरणा—

ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिन्दमौ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ॥ १॥

प्रभातकाल होने पर शत्रुओं का दमन करनेवाले वे दोनों राजकुमार नित्यकर्मों से निवृत्त हो विश्वामित्रजी को आगे कर नदी तट पर पहुँचे।

ते च सर्वे महात्मानो मुनयः संशितव्रताः।
उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमथाब्रुवन्॥ २॥

आश्रमवासी व्रतधारी मुनिगण एक उत्तम नौका उपस्थित कर विश्वामित्रजी से बोले—

आरोहतु भवान्नावं राजपुत्रपुरस्कृतः।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत् कालस्य पर्ययः॥ ३॥

अब आप विलम्ब न कर, राजपुत्रों सहित नौका पर सवार हो जाइए। आपकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो।

विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृषीनभिपूज्य च।
ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरङ्गमाम्॥ ४॥

विश्वामित्रजी "तथा अस्तु" कह और उन ऋषियों का सत्कार कर सागरगामिनी उस नदी के पार पहुँचे।

तीरं दक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ।
स वनं घोरसंकाशं दृष्ट्वा नृपवरात्मजः।
अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम्॥ ५॥

दक्षिण तट पर पहुँच, नाव से उतर के मन्द गति से आगे चले। चलते हुए दोनों राजकुमारों ने एक भयानक निर्जन वन देखा। उस वन को देख श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा—

अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणनादितम्।
भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः॥ ६॥

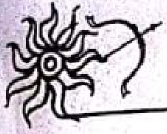
अहो! यह वन तो बड़ा भयानक प्रतीत होता है। इसमें झींगुर झंकार रहे हैं, बड़े-बड़े भयंकर जीवों के नाद से परिपूर्ण है और भास पक्षी भीषण शब्द कर रहे हैं।

नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः।
सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चोप शोभितम्॥ ७॥

बाज पक्षी अनेक प्रकार की भयावह बोलियाँ बोल रहे हैं। इस वन में सिंह, व्याघ्र, सूअर और हाथी भी दीख पड़ते हैं।

धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः।
संकीर्णं बदरीभिश्च किं न्वेतद्दारुणं वनम्॥ ८॥

धव, असगन्ध, अर्जुन, बिल्व, तेन्दुआ, पाढल और बेरी के वृक्षों से व्याप्त यह कौन-सा वन है?



तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः।
श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ यस्यैतद्दारुणं वनम्॥ ९॥

यह सुन, महातेजस्वी विश्वामित्रजी बोले—हे वत्स! सुनो, मैं बतलाता हूँ यह वन किसका है।

एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम।
मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ॥ १०॥

पहले यहाँ पर देवलोक के समान स्थितिवाले धन-धान्य से भरपूर और समृद्ध मलद और करूष नाम के दो देश बसे हुए थे।

कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षी वै कामरूपिणी।
बलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदा ह्यभूत्॥ ११॥

कुछ काल पश्चात् एक स्वेच्छाचारिणी यक्षिणी इधर आ निकली जिसमें अनेक हाथियों का बल है (अनेक हाथियों को पछाड़ने का सामर्थ्य है)।

ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः।
मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः शक्र पराक्रमः॥ १२॥

हे राम! तेरा कल्याण हो। उसका नाम ताटका है। वह सुन्द की स्त्री है। उसका पुत्र मारीच इन्द्र के समान पराक्रमी है।

वृत्तबाहुर्महावीर्यो विपुलास्यतनुर्महान्।
राक्षसो भैरवाकारो नित्यं त्रासयते प्रजाः॥ १३॥

गोल-गोल भुजाओंवाला, महा-पराक्रमी, बड़े मुखवाला और भयानक शरीरवाला वह राक्षस मारीच नित्य ही प्रजा को सताया करता है।

इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव।
मलदांश्च करूषाँश्च ताटका दुष्टचारिणी॥ १४॥

हे राघव! वह दुष्ट ताटका मलद और करूष दोनों देशों को नित्य ही उजाड़ा करती है।

सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने।
अत एव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः॥ १५॥

वह यक्षिणी इस मार्ग को रोके हुए यहाँ से आधा योजन दूर रहती है, अतः अब हमें ताटका के वन में चलना चाहिए।

स्वबाहुबलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम्।
मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः॥ १६॥

मेरे आदेश से तुम अपने पराक्रम से उस यक्षिणी का वधकर इस स्थान को पुनः निष्कण्टक बना दो।

एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम्।
गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम्॥ १७॥

हे राम! तुम इस दुष्टा, अत्यन्त कठोर हृदय और दुष्ट पराक्रमवाली ताटका को मार कर गौ और ब्राह्मण का हित साधन करो।

न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्त्तव्यं राजसूनुना॥ १८॥

हे नरोत्तम! तुम्हें ऐसी स्त्री का वध[१] करने में घृणा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि चारों वर्णों का हितसाधन राजकुमार का कर्त्तव्य होता है।

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा॥ १९॥

प्रजा की रक्षा के लिए अच्छा या बुरा कर्म, पालक वा अपवाद सहित कर्म को भी करना ही चाहिए।

राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः।
अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते॥ २०॥

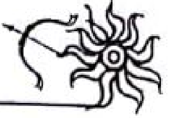
दुष्टों का वध राजकार्यों में नियुक्त पुरुषों का सनातन धर्म है। हे राम! यह ताटका अधर्मिणी है, अतः इसे मार डालो।

---

१. विश्वामित्रजी का यह उपदेश सर्वथा उचित और वेदानुकूल है। वेद में राजा के लिए आदेश है—

इन्द्र जहि पुमान्सं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥
—अथर्व० ८।४।२४

हे राजन्! पीड़ा देनेवाले पुरुष को और छल-कपट से दूसरों का नाश करनेवाली स्त्री का विनाश कर दो। उनकी गर्दनों को काटकर उन्हें नष्ट कर दो। ऐसे दुष्ट स्त्री-पुरुष दूसरे दिन तक जीवित न रहें।



श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत्॥ २१॥

हे नृप! सुनते हैं कि पूर्वकाल में इन्द्र ने प्रजा को सतानेवाली विरोचन की पुत्री मन्थरा का वध किया था।

विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी दृढव्रता।
अनिन्द्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता॥ २२॥

इसी प्रकार हे राम! विष्णु ने भृगु की पत्नी, शुक्र की माता को जो इन्द्र को मारना चाहती थी, मार डाला था।

एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रैर्महात्मभिः।
अधर्मसहिता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः।
तस्मादेनां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृप:॥ २३॥

हे राजपुत्र! ऐसे ही और भी बहुत-से महात्माओं ने अधर्मयुक्त स्त्रियों को मारा है। तुम भी मेरी आज्ञा से घृणा छोड़कर इसे मार डालो।

❮ षोडशः सर्गः ❯ (१६)

ताटका-वध—

मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वा नरवरात्मजः।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः॥ १॥

विश्वामित्रजी के उत्साह-वर्धक वचनों को सुन श्रीराम ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥ २॥

आपके कथनानुसार ताटका को मार कर मैं गौ और ब्राह्मण का हित साधन करने तथा इस देश के निवासियों को सुखी करने के लिए तैयार हूँ।

एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये बद्ध्वा मुष्टिमरिन्दमः।
ज्याघोषमकरोत्तीव्रं दिशः शब्देन नादयन्॥ ३॥

ऐसा कह, धनुष हाथ में ले, धनुष की डोरी को टंकार कर राम ने घोर शब्द किया जिससे दशों दिशाएँ गूँज उठीं।

तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।
श्रुत्वा चाभ्यद्रवत्क्रुद्धा यत्र शब्दो विनिःसृतः॥ ४॥

उस शब्द को सुन वह राक्षसी क्रोध से मूर्च्छित हो उस ओर तेजी से दौड़ी जिस ओर शब्द हुआ था।

तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम्।
प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत॥ ५॥

उस लम्बी-चौड़ी, क्रोधित, भयंकर और विकराल मुखवाली राक्षसी को देख श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—

पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः।
भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च॥ ६॥

हे लक्ष्मण! इस यक्षिणी का शरीर कैसा भयंकर है। कायर लोगों के हृदय तो इसे देखते ही काँप उठते होंगे।

एनां पश्य दुराधर्षां मायाबलसमन्विताम्।
विनिवृत्तां करोम्यद्य हृतकर्णाग्रनासिकाम्॥ ७॥

मैं इस विकट मायाविनी और दुर्जेया के कान, नाक काटकर इसे अभी भगाये देता हूँ।

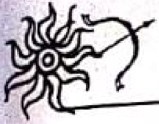
न ह्येनमुत्सहे हन्तुं स्त्रीस्वभावेन रक्षिताम्।
वीर्यं चास्या गतिं चैव हन्यामिति हि मे मतिः॥ ८॥

स्त्री होने के नाते मैं इसे मारना नहीं चाहता, परन्तु मैं इसके हाथ-पैर तोड़कर इसे दुष्टकर्म करने योग्य न रहने दूँगा।

एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोधमूर्च्छिता।
उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत॥ ९॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर ताटका क्रोध से पागल हो दोनों हाथों को उठाकर राम की ओर ही झपटी।

दृष्ट्वा गाधिसुतः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्।
अलं ते घृणया राम पापैषा दुष्टचारिणी॥ १०॥



यह देख विश्वामित्रजी ने राम से कहा—हे राम! इस दुष्टा पापिनी पर अधिक दया दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

यज्ञविघ्नकरी यक्षी पुरावर्धेत मायया।
वध्यतां तावदेवैषा पुरा सन्ध्या प्रवर्तते॥ ११॥

इस दुष्टा यज्ञ-विघ्नकारिणी यक्षिणी का बल और अधिक न बढ़ने पावे, अतः इसे सायंकाल होने से पूर्व ही यमलोक पठा दो।

तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव।
शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च॥ १२॥

उसे बिजली की भाँति वेग से अपनी ओर आते देख राम ने उसकी छाती में एक ऐसा बाण मारा कि वह पृथिवी पर गिर पड़ी और मर गई।

ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः।
मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

मुनि विश्वामित्र ताटका के वध से प्रसन्न हो राम का सिर सूँघ कर बोले—

इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन।
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदं मम॥ १४॥

हे शुभदर्शन राम! आज की रात हम यहीं निवास करेंगे। प्रातःकाल अपने आश्रम को प्रस्थान करेंगे।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथात्मजः।
उवास रजनीं तत्र ताटकाया वने सुखम्॥ १५॥

विश्वामित्र के वचन को सुन श्रीराम प्रसन्न हुए। वह रात्रि उन्होंने ताटका-वन में ही व्यतीत की।

➤ सप्तदशः सर्गः ➤ (१७)

विश्वामित्र द्वारा राम को अस्त्रदान—

अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः।
प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम्॥ १॥

वह रात्रि वहाँ बिता कर विश्वामित्रजी मुस्करा कर मधुरवाणी से श्रीराम से बोले—

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः॥ २॥

हे राम! मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ और प्रसन्नतापूर्वक सब अस्त्र तुम्हें देता हूँ।

देवासुरगणान्वापि सगन्धर्वोरगान्भुवि।
यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि॥ ३॥

इन अस्त्रों के द्वारा तुम सुर, असुर, गन्धर्व और नाग आदि शत्रुओं को अपने वश में करके जीत लोगे।

तानि दिव्यानि भद्रं ददाम्यस्त्राणि सर्वशः।
दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघव॥ ४॥

हे राम! मैं इन सब अस्त्रों को तुम्हें देता हूँ। लो, यह महादिव्य दण्डचक्र है।

धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च।
विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्रं चक्रं तथैव च॥ ५॥

हे वीर! धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र और अति प्रचण्ड ऐन्द्रास्त्र भी लो।

वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव॥ ६॥

हे नृपश्रेष्ठ! वज्रास्त्र, महादेवास्त्र, ब्रह्मशिर और ऐषीक को भी ग्रहण करो।

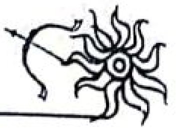
ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम्।
गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे॥ ७॥

हे महाबाहो! मैं यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्र देता हूँ। मोदकी और शिखरी—ये दो गदाएँ भी ग्रहण करो।

प्रदीप्ते नरशार्दूल प्रयच्छामि नृपात्मज।
धर्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च॥ ८॥

हे काकुत्स्थ राम! मैं तुम्हें अत्यन्त उग्र धर्मपाश और कालपाश नामक अस्त्र भी देता हूँ।

वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम्।
अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन॥ ९॥



हे रघुनन्दन! मैं तुम्हें वरुण का 'वरुणपाश' अस्त्र देता हूँ। शुष्क और आर्द्र दो अशनियाँ भी देता हूँ।

ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा।
आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नाम नामतः॥ १०॥

मैं तुम्हें पैनाक और नारायण अस्त्र भी प्रदान करता हूँ और आग्नेयास्त्र जिसको शिखर भी कहते हैं, देता हूँ।

वायव्यं प्रथनं नाम ददामि तव चानघ।
अस्त्रं हयशिरो नाम क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च॥ ११॥
शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव।
कङ्कालं मुसलं घोरं कपालमथ कङ्कणम्॥ १२॥

हे राम! यह लो प्रथम नामक वायव्यास्त्र, ह्यशिरास्त्र और क्रौञ्चास्त्र। ये दो शक्तियाँ भी लो। भयंकर कङ्काल, मुसल, कपाल और कङ्कण भी तुम्हें देता हूँ।

वधार्थं रक्षसां यानि ददाम्येतानि सर्वशः।
वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः॥ १३॥

विद्याधर और नन्दन नामवाले अस्त्र जो राक्षसों को मारने के लिए उपयोगी हैं—तुम्हें प्रदान करता हूँ।

असिरत्नं महाबाहो ददामि नृवरात्मज।
गन्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः॥ १४॥

हे राजकुमार! यह उत्तम तलवार भी तुम्हें देता हूँ और यह लो 'मानव' नामवाला गन्धर्वास्त्र।

प्रस्वापनं प्रशमनं दद्मि सौम्यं च राघव।
वर्षणं शोषणं चैव सन्तापनविलापने॥ १५॥

ये हैं प्रस्वापन (सुलानेवाला) प्रशमन, सौम्य, वर्षण, शोषण, सन्तापन और विलापन (रुलाने-वाला) अस्त्र।

मादनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा।
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः॥ १६॥

ये हैं कामोत्पादक दुर्धर्ष मदनास्त्र और मोहित करनेवाला पैशाचास्त्र।

प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः।
तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम्॥ १७॥

हे महायशस्वी नरशार्दूल! यह लो तामस और महाबली सौमन अस्त्र।

संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज।
सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा मयाधरं परम्॥ १८॥

हे महाबली! ये लो संवर्त्त, दुर्धर्ष, मौसल, सत्यास्त्र और परमास्त्र—मायाधर।

सौरं तेजप्रभं नाम परतेजोऽपकर्षणम्।
सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम्॥ १९॥

यह लो शत्रु के तेज को खींचनेवाला तेजप्रभ नामक अस्त्र और ये हैं—सोमास्त्र, शिशिरास्त्र और त्वाष्ट्रास्त्र।

दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम्।
एतान्राम महाबाहो कामरूपान्महाबलान्।
गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज॥ २०॥

ये हैं दारुण भगास्त्र, शीतेषु और मानव नामक अस्त्र। हे महाबाहो राम! तुम इन महाबली, कामरूपी कार्यवाहक अस्त्रों को शीघ्र ग्रहण करो।

स्थितस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा।
तान्यस्त्राणि तदा विप्रो राघवाय न्यवेदयत्॥ २१॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने पवित्र हो और पूर्व की ओर मुख कर वे सब अस्त्र श्रीराम को दे-दिये। (उनके चलाने और रोकने की विधि बता दी)।

ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम्।
अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे॥ २२॥

तत्पश्चात् प्रसन्नमन श्रीराम विश्वामित्रजी का अभिवादन कर आगे चलने को तैयार हुए।



अष्टादशः सर्गः (१८)

सिद्धाश्रम—

गच्छन्नेव च काकुत्स्थे विश्वामित्रमथाब्रवीत्।
किमेतन्मेघसंकाशं पर्वतस्याविदूरतः॥ १॥

चलते-चलते श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा—मुने! पर्वत के समीप जो काला मेघ-सा दीख पड़ता है वह क्या है?

वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतूहलं हि मे।
दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च॥ २॥

यहाँ से वह वृक्षों का झुण्ड-सा प्रतीत होता है। उसे देखकर मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है। वह अनेक वन-पशुओं से युक्त, दर्शनीय और मनोहर-सा जान पड़ता है।

नाना प्रकारैः शकुनैर्वल्गुनादैरलङ्कृतम्।
निस्सृताः स्म मुनिश्रेष्ठ कान्ताराद्रोमहर्षणात्॥ ३॥

यह स्थान मधुर शब्द करनेवाले पक्षियों से निनादित हो रहा है। ऐसा लगता है अब हम भयंकर एवं रोमाञ्चकारी वन से पार हो गये हैं।

संप्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मघ्ना दुष्टचारिणः।
तव यज्ञस्य विघ्नाय दुरात्मानो महामुने॥ ४॥

हे महामुने! क्या हम लोग आपके आश्रम पर पहुँच गये हैं जहाँ दुराचारी, ब्रह्महत्यारे राक्षस आपके यज्ञों में विघ्न किया करते हैं।

अथ तस्याप्रमेयस्य तद्वनं परिपृच्छतः।
विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमपचक्रमे॥ ५॥

अद्वितीय राम के उस वन के सम्बन्ध में पूछने पर विश्वामित्रजी बोले—

इह राम महाबाहो विष्णुर्देववरः प्रभुः।
तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहातपाः॥ ६॥

हे राम! देव-प्रजा में श्रेष्ठ महातपस्वी विष्णु ने तप करने के लिए यहाँ निवास किया था।

एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः।
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः॥ ७॥

पहले यह आश्रम महात्मा वामन का था। यहाँ पर उनका तप सिद्ध हुआ था। इसी से इसका नाम सिद्धाश्रम प्रसिद्ध[1] है।

मयापि भक्त्या तस्यैष वामनस्योपभुज्यते।
एतमाश्रमायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः॥ ८॥

महात्मा वामन में भक्ति होने के कारण मैं भी इसी आश्रम का उपभोग करता हूँ। इसी आश्रम में आकर राक्षस लोग उपद्रव किया करते हैं।

अत्रैव पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः।
अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम्॥ ९॥

हे पुरुषसिंह! इसी आश्रम में उन दुराचारियों का वध करना होगा। हे राम! आज हम उसी उत्तम सिद्धाश्रम को चलते हैं।

तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम।
इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम्।
प्रविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महामुनिः॥ १०॥

हे वत्स! यह आश्रम जैसा मेरा है वैसा ही तुम्हारा भी है। यह कह राम-लक्ष्मण को साथ लेकर आश्रम में प्रविष्ट होते हुए विश्वामित्र अत्यन्त शोभित हुए।

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः।
उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन्॥ ११॥

विश्वामित्रजी को देख सिद्धाश्रम-वासियों ने उठकर उनका स्वागत किया।

यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते।
तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम्॥ १२॥

जिस प्रकार आश्रम-वासियों ने विश्वामित्र का सम्मान किया उसी प्रकार उन्होंने राजकुमारों का भी आतिथ्य-सत्कार किया।

---

१. आजकल सिद्धाश्रम को 'बक्सर' कहते हैं।



मुहूर्तमथ विश्रान्तौ राजपुत्रावरिन्दमौ।
प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ॥ १३॥

थोड़ी देर विश्राम कर शत्रुहन्ता दोनों राजकुमारों ने हाथ जोड़ कर विश्वामित्रजी से कहा—

अद्यैव दीक्षां प्रविश भद्रं ते मुनिपुङ्गव।
सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात्सत्यमस्तु वचस्तव॥ १४॥

आपका मङ्गल हो। आप आज ही यज्ञ आरम्भ कर दीजिए। यह सिद्ध आश्रम है। इसका नाम सार्थक हो और आपका वचन सत्य हो।

एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महानृषिः।
प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः॥ १५॥

यह सुन महातेजस्वी ऋषिवर विश्वामित्र ने नियमपूर्वक जितेन्द्रिय हो दीक्षा में प्रवेश किया। (यज्ञारम्भ किया)

कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च॥ १६॥
प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्॥ १७॥

दोनों कुमारों ने सावधानतापूर्वक रात्रि व्यतीत की। प्रातः होते ही दोनों राजकुमारों ने उठकर सन्ध्या की। तदनन्तर नियमानुसार आचमनपूर्वक पवित्र होकर गायत्री मन्त्र का जप किया, फिर अग्निहोत्र करके आसन पर विराजमान विश्वामित्रजी को प्रणाम किया।

◀ एकोनविंशः सर्गः ▶ (१९)

मारीच और सुबाहु राक्षसों का पराभव—

अथ तौ देशकालज्ञौ राजपुत्रावरिन्दमौ।
देशे काले च वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः॥ १॥

दैनिक कर्त्तव्यों से निवृत्त हो, देशकाल को जाननेवाले, शत्रुहन्ता दोनों राजकुमार देशकाल का विचार कर विश्वामित्रजी से बोले—

भगवञ्श्रोतुमिच्छावो यस्मिन्काले निशाचरौ।
संरक्षणीयौ तो ब्रह्मन्नातिवर्तेत तत्क्षणम्॥ २॥

हे भगवन्! हम यह जानना चाहते हैं कि उन दोनों राक्षसों से किस समय रक्षा करनी है। हे ब्रह्मन्! कहीं ऐसा न हो कि वह समय ही बीत जाये।

एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ त्वरमाणौ युयुत्सया।
सर्वे ते मुनयः प्रीताः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ॥ ३॥

इस प्रकार कहते हुए और युद्ध के लिए शीघ्रता करते हुए उन दोनों राजकुमारों की प्रशंसा कर आश्रम-निवासी मुनियों ने कहा—

अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतं राघवौ युवाम्।
दीक्षां गतो ह्येष मुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति॥ ४॥

हे राजकुमारो! आप छह दिन तक यज्ञ की रक्षा करें। विश्वामित्रजी यज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं वे छह दिन तक मौन रहेंगे।

तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ।
अनिद्रौ षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्॥ ५॥

यशस्वी और आलस्य-रहित वे दोनों राजकुमार, उन मुनियों के वचन सुन, छह दिन तक उस आश्रम की रक्षा करते रहे।

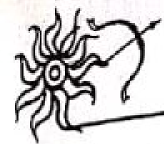
अथ काले गते तस्मिन्षष्ठेऽहनि समागते।
आकाशे च महाञ्शब्दो प्रादुरासीद्भयानकः॥ ६॥

पांच दिन तो निर्विघ्न समाप्त हो गये। छठे दिन आकाश में भयानक शब्द हुआ।

मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचराश्च ये।
आगम्य भीमसङ्काशा रुधिरौघमवासृजन्॥ ७॥

मारीच, सुबाहु और उनके साथ अन्य भयङ्कर राक्षसों ने यज्ञवेदी पर रुधिर की वर्षा की।

तावापतन्तौ सहसा दृष्ट्वा राजीवलोचनः।
लक्ष्मणं त्वभिसंप्रेक्ष्य रामो वचनमब्रवीत्॥ ८॥



उन्हें अपनी ओर आते देख कमलनेत्र श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखकर बोले—

पश्य लक्ष्मण दुर्वृत्तान्राक्षसान्पिशिताशनान्।
मानवास्त्रसमाधूताननिलेन यथा घनान्॥ ९॥

हे लक्ष्मण! तनिक इन दुराचरी और मांसभक्षक राक्षसों को तो देखो। जैसे वायु बादलों को भगा देता है उसी प्रकार मैं इन्हें मानवास्त्र से अभी उड़ाता हूँ।

मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम्।
चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघव॥ १०॥

(यह कह) परमोदार श्रीराम ने क्रुद्ध हो एक चमचमाता मानवास्त्र मारीच की छाती में मारा।

निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः॥ ११॥

मारीच को भागते हुए देख श्रीराम लक्ष्मण से बोले—अब मैं इन निर्दयी और दुष्टाचारियों का भी वध करूँगा।

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव।
विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः॥ १२॥
सुबाहूरसि चिक्षेप स विद्धः प्रापतद्भुवि।
शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः॥ १३॥

श्रीलक्ष्मणजी से ऐसा कह, अपना हस्त-लाघव दिखाते हुए राम ने आग्नेयास्त्र-निकाला और सुबाहु की छाती में मारा। उस बाण से विद्ध सुबाहु भूमि पर गिर पड़ा और मर गया। शेष बचे राक्षसों को श्रीराम ने वायव्यास्त्र चला कर नष्ट कर दिया।

स हत्वा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा॥ १४॥

उन विघ्नकारी समस्त राक्षसों को मारने पर राम मुनियों से इस प्रकार पूजित हुए जैसे असुरों को मारने पर इन्द्र पूजित हुए थे।

अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः।
निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत्॥ १५॥

यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने पर महर्षि विश्वामित्र दशों दिशाओं को उपद्रव-रहित देख, श्रीराम से बोले—

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः।
स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां सन्ध्यामुपागमत्॥ १६॥

हे महाबाहो! मैं कृतार्थ हुआ। तुमने गुरु-आज्ञा का अच्छी प्रकार पालन किया है। हे यशस्विन् राम! तुमने सचमुच इस आश्रम का नाम सिद्धाश्रम चरितार्थ कर दिया। इस प्रकार राम की प्रशंसा कर मुनि विश्वामित्र दोनों कुमारों के साथ सन्ध्या करने लगे।

➤ विंशः सर्गः ➤ (२०)

मिथिला को प्रस्थान—

अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ।
ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ १॥

वीरवर एवं प्रसन्नचित राम-लक्ष्मण ने विश्वामित्रजी का कार्य पूर्ण कर रात्रि को आनन्द-पूर्वक उसी आश्रम में शयन किया।

प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ।
विश्वामित्रमृषींश्चान्यान् स हितावभिजग्मतुः॥ २॥

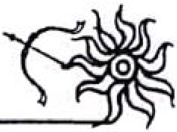
प्रातःकाल सन्ध्या आदि कर्मों से निवृत्त हो वे दोनों विश्वामित्रजी तथा अन्य ऋषियों के पास गये।

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम्।
ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ॥ ३॥

अग्नि के समान देदीप्यमान मुनि को प्रणाम कर मधुरभाषी राम और लक्ष्मण मधुर वचन बोले—

इमौ स्म मुनिशार्दूल किङ्करौ समुपागतौ।
आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव किम्॥ ४॥

हे मुनिशार्दूल! हम दोनों आपके दास उपस्थित हैं। आज्ञा दीजिए, हम आपकी क्या सेवा करें?



एवमुक्तास्ततस्ताभ्यां सर्व एव महर्षयः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन्॥ ५॥

उन दोनों राजकुमारों के ऐसा कहने पर, विश्वामित्रजी को आगे करके सब महर्षि बोले—

मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति।
यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्र यास्यामहे वयम्॥ ६॥

हे नरश्रेष्ठ! धर्मिष्ठ मिथिलाधिपति जनक के यहाँ एक बड़ा यज्ञ हो रहा है। हम सब लोग वहाँ जा रहे हैं।

त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि।
अद्भुतं च धनूरत्नं तत्रैकं द्रष्टुमर्हसि॥ ७॥

हे नरशार्दूल! आप हमारे साथ चलेंगे। वहाँ चलने पर आप एक अद्भुत और श्रेष्ठ धनुष देख सकोगे।

एवमुक्त्वा मुनिवरः सर्षिसङ्घः सकाकुत्स्थः।
उत्तरां दिशिमुद्दिश्य प्रस्थातुमपचक्रमे॥ ८॥

ऐसा कह कर मुनि विश्वामित्र ऋषियों और राजकुमारों को साथ ले उत्तर दिशा की ओर रवाना हुए।

तं व्रजन्तं मुनिवरं मृगपक्षिगणाश्चैव।
अनुजग्मुर्महात्मानो विश्वामित्रं तपोधनम्॥ ९॥
निवर्तयामास ततः पक्षिसङ्घान्मृगानपि।
ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे।
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणकूले समागताः॥ १०॥

विश्वामित्रजी के चलते ही उस आश्रम के हिरण और पक्षी भी तपोधन महात्मा विश्वामित्रजी के पीछे हो लिये।

परन्तु विश्वामित्रजी ने उन पशु-पक्षियों को लौटा दिया।

जब वे लोग बहुत दूर निकल गये और सूर्य अस्त होने लगा तो उन्होंने शोण (सोन) नदी के तट पर डेरे डाले।

तेऽस्तंगते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य निषेदुरमितौजसः॥ ११॥

सूर्यास्त होने पर उन लोगों ने स्नान कर सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र किया। तदनन्तर वे विश्वामित्रजी को आगे करके बैठ गये।

अथ रामो महातेजा विश्वामित्रं महामुनिम्।
पप्रच्छ मुनिशार्दूलं कौतूहलसमन्वितम्॥ १२॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीराम ने मुनिवर विश्वामित्रजी से कौतूहलपूर्वक पूछा—

भगवन्को न्वयं देशः समृद्धवनशोभितः।
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ १३॥

भगवन्! यह हरे-भरे वनों से युक्त देश कौन-सा है, मैं यह जानना चाहता हूँ। कृपया मुझे इसका ठीक-ठीक वृत्तान्त बताइए।

चोदितो राम-वाक्येन कथयामास सुव्रतः।
तस्य देशस्य निखिलमृषिमध्ये महातपाः॥ १४॥

श्रीराम के पूछने पर तपस्वी और व्रतशील विश्वामित्रजी ने अन्य ऋषियों के मध्य में उस देश का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

➤ एकविंशः सर्गः ➤ (२१)

गङ्गा के तट पर—

उपास्य रात्रिशेषं तु शोणकूले महर्षिभिः।
निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥ १॥

विश्वामित्रजी ने ऋषियों सहित वह रात्रि शोण नदी पर व्यतीत की। प्रातःकाल होने पर वे राम से बोले—

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायभिरोचय॥ २॥

हे राम! उठो, प्रातःकाल हो चुका। तुम्हारा कल्याण हो। अब सन्ध्योपासन कर चलने की तैयारी करो।



**तत् श्रुत्वा वचनं तस्य कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम्।
पश्यन्तस्ते प्रयाता वै वनानि विविधानि च॥ ३॥**

मुनिवर का यह वचन सुन श्रीराम प्रातः कृत्यों से निवृत्त हुए, फिर वे सब लोग विविध वनों को देखते हुए आगे चले।

**ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धदिवसे तदा।
जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम्॥ ४॥**

जब वे चलते हुए पर्याप्त दूर निकल गये तो दोपहर के समय उन्हें मुनियों से सेवित श्रेष्ठ गङ्गा दृष्टिगोचर हुई।

**तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारससेविताम्।
बभूवुर्मुनयः सर्वे मुदिताः सह राघवाः॥ ५॥**

हंस और सारसों से सुशोभित उस पुण्य-सलिला गङ्गा को देखकर राम-लक्ष्मण सहित सब ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

**तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम्।
ततः स्नात्वा हुत्वा चैव प्राश्य चामृतवद्धविः॥ ६॥
विविशुर्जाह्नवी तीरे शुचौ मुदित मानसाः।
विश्वामित्रं महात्मानं परिवार्य समन्ततः॥ ७॥**

वे सब लोग गङ्गा के तट पर ठहर गये। स्नान, सन्ध्या, यज्ञ कर यज्ञशिष्टान्न को खाने के पश्चात् वे सब लोग प्रसन्नचित्त हो विश्वामित्रजी के चारों ओर बैठ गये।

**सम्प्रहृष्टमना रामो विश्वामित्रमथाब्रवीत्।
भगवञ्श्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीम्॥ ८॥**

तब प्रसन्नचित्त श्रीराम ने कहा—भगवन्! मैं त्रिपथगा गङ्गा का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ।

**तथा ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रस्तपोधनः।
निखिलेन कथां सर्वामृषिमध्ये न्यवेदयत्॥ ९॥**

राम के इस प्रकार पूछने पर तपोधन विश्वामित्रजी ने ऋषियों के मध्य में बैठे हुए सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

◀ द्वाविंशः सर्गः ▶ (२२)

विशाला नगरी में—

**ततः प्रभातविमले विश्वामित्रं महामुनिम्।
उवाच राघवो वाक्यं कृताह्निकमरिन्दमः॥ १॥**

विमल प्रभात होने पर दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो श्रीराम विश्वामित्रजी से बोले—

**गता भगवती रात्रिः श्रोतव्यं परमाद्भुतम्।
तराम सरितां श्रेष्ठां पुण्यां त्रिपथगां नदीम्॥ २॥**

हे महर्षे! रात्रि तो अद्भुत कथा सुनते हुए ही व्यतीत हो गई। आइए, अब नदियों में श्रेष्ठ त्रिपथगामिनी गङ्गा नदी को पार करें।

**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः।
सन्तारं कारयामास सर्षिसङ्घः स राघवः॥ ३॥**

महात्मा राम के ये वचन सुन विश्वामित्रजी ऋषिगण और राजकुमारों के साथ गङ्गा के पार हुए।

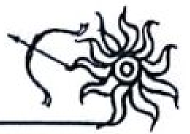
**उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यर्षिगणं तदा।
गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम्॥ ४॥**

गङ्गाजी के उत्तर तट पर पहुँच ऋषियों को विदाकर, वे गङ्गा के किनारे बैठ गये। तभी उन्होंने विशाला नाम की नगरी को देखा।

**ततो मुनिवरस्तूर्णं जगाम सहराघवः।
विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा॥ ५॥**

तदनन्तर विश्वामित्रजी दोनों राजकुमारों को साथ ले स्वर्ग के समान सुन्दर और रमणीक विशाला नगरी में गये।

**अथ रामो महाप्राज्ञो विश्वामित्रं महामुनिम्।
पप्रच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वा विशालामुत्तमां पुरीम्॥ ६॥**



तब बुद्धिमान् राम ने हाथ जोड़कर विश्वामित्र-जी से विशालापुरी का इतिहास पूछा—

कतमो राजवंशोऽयं विशालायां महामुने।
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते परं कौतूहलं हि मे॥ ७॥

हे मुने! आपका कल्याण हो। कृपया बताइए इस पुरी में किस वंश का राजा राज्य करता है। यह जानने के लिए मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्य मुनिपुङ्गवः।
आख्यातुं तत्समारेभे विशालायाः पुरातनम्॥ ८॥

मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी राम का वह वचन सुन, विशाला नगरी का प्राचीन इतिहास कहने लगे।

एष देशः स काकुत्स्थ महेन्द्राध्युषितः पुरा।
दितिं यत्र तपः सिद्धामेव परिचचार सः॥ ९॥

हे राम! यह वही स्थान है जहाँ इन्द्र ने तपः-सिद्धा माता दिति की सेवा की थी।

इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः।
अलम्बुसायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः॥ १०॥

तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता।
सम्प्रति पुरीं शासति सुमतिर्नाम दुर्जयः॥ ११॥

हे पुरुषसिंह! इक्ष्वाकु के परम धार्मिक पुत्र विशाल ने, जो अलम्बुसा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, यह नगरी बसाई थी। इस समय दुर्जय सुमति इस पुरी पर शासन करते हैं।

इक्ष्वाकोस्तु प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः।
दीर्घायुषा महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः॥ १२॥

महाराज इक्ष्वाकु की कृपा से विशाला नगरी के सभी राजा दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी एवं धार्मिक होते रहे हैं।

इहाद्य रजनीं राम सुखं वत्स्यामहे वयम्।
श्वः प्रभाते नरश्रेष्ठ जनकं द्रष्टुमर्हसि॥ १३॥

हे राम! आज की रात हम यहीं विश्राम करेंगे और कल राजा जनक से भेंट करेंगे।

सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम्।
श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठः प्रत्यागच्छन्महायशाः॥ १४॥

महातेजस्वी एवं यशस्वी राजा सुमति विश्वामित्र का आगमन सुन उनके स्वगतार्थ आये।

पूजां च परमां कृत्वा सोपाध्यायः सबान्धवः।
प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत्॥ १५॥

उपाध्याय और परिवार जनों के साथ उनका स्वागत-सत्कार कर एवं कुशल पूछ कर वे विश्वामित्रजी से कहने लगे—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे विषयं मुने।
संप्राप्तो दर्शनं चैव नास्ति धन्यतरो मम॥ १६॥

हे मुने! मैं धन्य हूँ। मैं अनुगृहीत हूँ जो आपने मेरे राज्य में पधार कर मुझे दर्शन दिये। मुझसे बढ़कर धन्य आज और कोई नहीं है।

◀ त्रयोविंशः सर्गः ▶ (२३)

अहल्या-उद्धार—

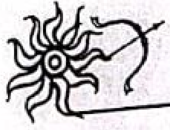
ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ।
उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः॥ १॥

श्रीराम और लक्ष्मण भी राजा सुमति से सत्कृत हो एक रात वहाँ ठहरे। दूसरे दिन वे मिथिलापुरी को प्रस्थानित हुए।

मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः।
पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम्॥ २॥

मिथिलापुरी के उपवन में एक पुराने, निर्जन, किन्तु रमणीक आश्रम को देखकर श्रीराम ने विश्वामित्रजी से पूछा—

इदमाश्रमसंकाशं किं न्विदं मुनिवर्जितम्।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् कस्यायं पूर्व आश्रमः॥ ३॥



यह स्थान आश्रम के समान लगता है, परन्तु यह मुनियों से रहित है। यह क्या है ? भगवन्! मैं जानना चाहता हूँ कि यह आश्रम पहले किसका था।

तत् श्रुत्वा राघवेणोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः।
प्रत्युवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ४॥

श्रीराम का यह कथन सुन वाक्यविशारद (बोलने में चतुर) महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र बोले—

गौतमस्य नरश्रेष्ठ आश्रमोऽयं महात्मनः।
स चेह तप आतिष्ठदहल्यासहिता पुरा ॥ ५ ॥

हे राम! पूर्वकाल में यह गौतम का आश्रम था। इस आश्रम में उन्होंने बहुत समय तक अहल्या के साथ तप किया था।

कदाचिद्दिवसे राम ततो दूरं गते मुनौ।
तस्यान्तरं विदित्वा तु सहस्राक्षः शचीपतिः ॥ ६ ॥
मुनिवेषधरोऽहल्यामिदं वचनमब्रवीत्।
सङ्गमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥ ७ ॥

हे राम! एक दिन गौतम कहीं दूर निकल गये। गौतम को आश्रम में अनुपस्थित देखकर इन्द्र गौतम का रूप धारण कर आश्रम में आये और अहल्या से बोले—हे सुन्दरी! मैं तेरे साथ मैथुन करना चाहता हूँ।

मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥ ८ ॥

हे रघुनन्दन! मुनि-वेष धारण किये हुए इन्द्र को पहचान कर भी दुष्टा अहल्या ने प्रसन्नतापूर्वक इन्द्र के साथ सम्भोग किया।

अथ सङ्गम्य तु तया निश्चक्रामोटजात्ततः।
स सम्भ्रमात्त्वरन् राम शंकितो गौतमं प्रति ॥ ९ ॥

हे राम! इस प्रकार अहल्या से समागम करके गौतम के डर से शंकित इन्द्र उस कुटी से बाहर निकला।

गौतमं स ददर्शाथ प्रविशन्तं महामुनिम्।
दृष्ट्वा सुरपतिस्त्रस्तो विवर्णवदनोऽभवत् ॥ १० ॥

जैसे ही इन्द्र बाहर निकला उसने गौतम को कुटी में प्रवेश करते हुए देखा। गौतम को देखते ही इन्द्र भयभीत हो गया और उसका चेहरा पीला पड़ गया।

अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः।
दुर्वृत्तं वृत्तसम्पन्नो रोषाद्वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

गौतम ने इन्द्र को अपना रूप धारण किये हुए देख और उनके मुखमण्डल से यह जानकर कि वे असत् कर्म करके आ रहे हैं उन्हें क्रोध में भरकर यह शाप दिया—

मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते।
अकर्तव्यमिदं तस्माद्विफलस्त्वं भविष्यसि ॥ १२ ॥

अरे दुष्ट! मेरा रूप धारण करके तूने यह कुकर्म किया है, अतः तू नपुंसक हो जा। (दुराचारी नपुंसक हो ही जाएगा)।

तथा शप्त्वा स वै शक्रमहल्यामपि शप्तवान्।
वस वर्षसहस्राणि तपयन्ती भस्मशायिनी ॥ १३ ॥

इन्द्र को शाप देकर गौतम ने अहल्या को भी शाप दिया—तू कठोर तप करती हुई और भूमि के ऊपर शयन करती हुई बहुत वर्षों तक यहाँ निवास कर।

तदागच्छ महातेज आश्रमं पुण्यकर्मणः।
तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम् ॥ १४ ॥

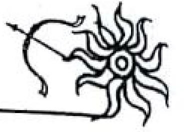
हे महातेजस्वी! अब तुम पुण्यात्मा गौतम के आश्रम में पधारो और इस देवरूपिणी अहल्या का उद्धार करो।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघव सह लक्ष्मणः।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य तमाश्रममथाविशत् ॥ १५ ॥

विश्वामित्र के ये वचन सुन राम और लक्ष्मण ने उन्हें आगे कर उस आश्रम में प्रवेश किया।

ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम्।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्या सुरासुरैः।
राघवौ तु ततस्तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ॥ १६ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि अहल्या तप के तेज से देदीप्यमान हो रही थी और सुर तथा असुर कोई भी उससे दृष्टि नहीं मिला सकता था। श्रीराम और



लक्ष्मण ने प्रसन्न होकर उसके पैर छूए[१]।

पाद्यमर्घ्यं तथाऽतिथ्यं चकार सुसमाहिता।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो जगाम मिथिलां ततः॥ १७॥

अहल्या ने भी अर्घ्य-पाद्य आदि द्वारा उनका आतिथ्य किया। दोनों राजकुमार उस आतिथ्य को ग्रहण कर मिथिलापुरी में गये।

◀ चतुर्विंशः सर्गः ▶ (२४)

मिथिलापुरी में—

ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत्॥ १॥

तब विश्वामित्रजी को आगे करके श्रीराम-लक्ष्मण ईशानकोण (उत्तर-पूर्व के मध्य की दिशा) की ओर चलकर जनक की यज्ञशाला में पहुँचे।

विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा च नृपतिस्तदा।
शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितः॥ २॥
ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम्।
प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः॥ ३॥

विश्वामित्रजी के आने का संवाद सुन अपने चरित्रवान् पुरोहित शतानन्दजी को आगे कर विनय युक्त महाराज जनक अपने ऋत्विजों सहित अर्घ्य आदि का सामान ले तुरन्त वहाँ पहुँचे।

प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः।
पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम्॥ ४॥

महाराज जनक के आतिथ्य को स्वीकार कर विश्वामित्रजी ने उनके राज्य की कुशलता और यज्ञ की निर्विघ्नता पूछी।

स तांश्चाथ मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्यायपुरोधसः।
यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवत्॥ ५॥

फिर ऋत्विज तथा पुरोहित सहित सब ऋषियों की भी कुशलता पूछकर विश्वामित्रजी सबके साथ आनन्द से मिले।

अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत।
अद्य यज्ञसमृद्धिर्मे सफलता दैवतैः कृता॥ ६॥

तब राजा जनक हाथ जोड़कर बोले—विद्वानों की कृपा से मेरे यज्ञ में जो कमी थी वह आज पूर्ण हुई।

---

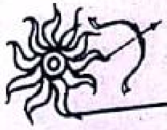
१. बाबा तुलसीदासजी ने अहल्या की कथा इस प्रकार लिखी है—

आश्रम एक दीख मग माहीं।
खगमृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी।
सकल कथा मुनि कहा बिसेषी॥
गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥
परसत पद पावन सोक नसावन
प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जल सुखदायक
सनमुख होइ कर जोरि रही॥

यह कथा आदि कवि महर्षि वाल्मीकि से सर्वथा विरुद्ध है, कपोलकल्पित एवं अप्रामाणिक है।

वाल्मीकिजी ने अहल्या का शिला होना कहीं नहीं लिखा है। अतः राम का शिला को पैर लगाना और उस शिला का स्त्री बन जाना—यह सारी कथा सृष्टि-नियम के विरुद्ध और गप्प है।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा वर्णित कथा में राम और लक्ष्मण ने अहल्या को तप से देदीप्यमान देखा और दोनों भाइयों ने प्रसन्न होकर उसके चरण पकड़ लिये। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। अहल्या ऋषि-पत्नी थी। राम क्षत्रिय राजकुमार थे। वे अहल्या के पैर कैसे लगा सकते थे?



अद्य यज्ञफलं प्राप्तं भगवद्दर्शनान्मया।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गवः।
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन्प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह॥ ७॥

भगवन्! आज आपके दर्शन कर मुझे यज्ञ का फल प्राप्त हो गया। आपके मुनियों सहित यज्ञशाला में पधारने से मैं धन्य और अनुगृहीत हुआ।

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं प्रहृष्टवचनस्तदा।
पुनस्तं परिपप्रच्छ प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः॥ ८॥

विश्वामित्रजी से ऐसा कह, प्रसन्न मुख हाथ जोड़कर उन्होंने पुनः पूछा—

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ।
गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ॥ ९॥
पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणीधनुर्धरौ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ॥ १०॥
कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ भूषयन्ताविमं देशम्।
कस्य पुत्रौ मुनिश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ११॥

भगवन्! आपका कल्याण हो! ये दोनों कुमार पराक्रम में देवताओं के समान हैं। ये गज (हाथी) सिंह, शार्दूल और वृषभ[१] (साँड) के समान गतिवाले हैं। दोनों ही वीर हैं। इनकी आँखें कमल के समान विशाल हैं, इन्होंने तलवार, तर्कश और धनुष धारण किये हुए हैं, सौन्दर्य में ये अश्विनी कुमारों के समान हैं, इनका यौवन फूट रहा है। इस देश को शोभायमान करते हुए ये पैदल ही क्यों आये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! ये किसके पुत्र हैं। यह सब मैं जानना चाहता हूँ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः।
न्यवेदयत् महात्मानौ पुत्रौ दशरथस्य तौ॥ १२॥
सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा।
महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा॥ १३॥

महाराज जनक के ये वचन सुन विश्वामित्रजी कहने लगे—ये दोनों महाराज दशरथ के सुपुत्र हैं। ऐसा कह उन्होंने उन दोनों का सिद्धाश्रम में रहना और राक्षसों के वध करने का वृत्तान्त कहकर यह भी कहा कि ये आपके धनुष को देखने आये हैं।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा रामलक्ष्मणसन्निधौ।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम्॥ १४॥

विश्वामित्रजी के वचनों को सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण के सामने राजा जनक ने हाथ जोड़ कर कौशिकजी से कहा—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुङ्गव।
यज्ञं काकुत्स्थसहितः प्राप्तवानसि कौशिक॥ १५॥

हे कौशिक! मैं अपने को धन्य मानता हूँ और आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि आप राम-लक्ष्मण सहित मेरे यज्ञ में पधारे हैं।

श्वः प्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः।
स्वागतं तपतांश्रेष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि॥ १६॥

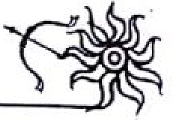
हे महातेजस्विन्! कल प्रभात काल फिर मुझे दर्शन दीजिए। हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं वैदेहो मिथिलाधिपः।
प्रदक्षिणं चकाराथ सोपाध्यायः सबान्धवः॥ १७॥

तदनन्तर महाराज जनक ने अपने उपाध्याय और बन्धु-बान्धवों सहित विश्वामित्रजी की प्रदक्षिणा की ओर चले गये।

---

१. गोविन्दराजजी ने इन गतियों की व्याख्या इस प्रकार की है—१. 'गाम्भीर्यगमने गजतुल्यौ'—गाम्भीर्य गमन में हाथी के समान गतिवाले। २. 'पराभिभवनार्हगमने सिंहतुल्यौ'—दूसरे का पराभव करने के लिए जाते समय सिंह के समान चलनेवाले। ३. 'भयंकरगमने शार्दूलतुल्यौ' —गर्वसहित चलने में साँड के समान।



◀ पञ्चविंशः सर्गः ▶ (२५)

राजसभा में जनक का धनुष और सीता का परिचय देना—

ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः।
विश्वामित्रो महात्मानमाजुहाव सराघवम्॥ १॥

प्रातःकाल होने पर नित्यकर्मों से निवृत्त हो राजा जनक ने दोनों कुमारों सहित विश्वामित्रजी को बुला भेजा।

तमर्चयित्वा धर्मात्मा शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।
राघवौ च महात्मानौ तदा वाक्यमुवाच ह॥ २॥

शास्त्रविधि के अनुसार विश्वामित्र एवं राम-लक्ष्मण की पूजा कर धर्मात्मा जनक बोले—

भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किं करोमि त्वानघ।
भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवता ह्यहम्॥ ३॥

भगवन्! आपका स्वागत है। हे निष्पाप! मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिए, क्योंकि मैं आपके द्वारा आज्ञा किये जाने योग्य हूँ।

एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना।
प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः॥ ४॥

जनकजी के ऐसा कहने पर वाक्यविशारद मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी ने कहा—

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ।
द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति॥ ५॥

लोक में प्रसिद्ध, क्षत्रियवंश में उत्पन्न दशरथ के ये दोनों पुत्र उस श्रेष्ठ धनुष को देखना चाहते हैं जो आपके यहाँ रखा है।

एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम्।
श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिहि तिष्ठति॥ ६॥

यह सुन राजा जनक ने विश्वामित्रजी से कहा जिस प्रयोजन के लिए यह धनुष रखा है उसे सुनिए।

वीर्यशुल्केति मे कन्या नाम्ना सीतेति विश्रुता।
योगिन्या स्तनयां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम्॥ ७॥
वरयामासुरागम्य राजानो मुनिपुङ्गव।
तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम्।
वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम्॥ ८॥

योगिनी[1] के गर्भ से उत्पन्न सीता नाम से प्रसिद्ध मेरी वीर्यशुल्का (पराक्रम दिखाकर प्राप्त करने योग्य) कन्या को युवा होते हुए देख उसके साथ विवाह करने के लिए अनेक राजा लोग आये। मैंने उन राजाओं

---

१. सीता के सम्बन्ध में ऐसा प्रसिद्ध है कि वह पृथिवी से उत्पन्न हुई थी और प्रक्षेपकों ने इस प्रकार के श्लोक बनाकर रामायण में डाल दिये। रामायण के ध्यान-पूर्वक अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सीता पृथिवी से उत्पन्न नहीं हुई। सीता को स्थान-स्थान पर जनक '**ममात्मजा**' मेरी पुत्री कहते हैं। सीताजी ने ऊर्मिला (लक्ष्मण की पत्नी) को अनुजा कहा है। अनुजा का अर्थ है—**पश्चाज्जायत इति**। जो पीछे उत्पन्न हो, अतः सिद्ध हुआ कि सीता पृथिवी से उत्पन्न नहीं हुई थी। तुलसी-रामायण में सीता को पृथिवी से उत्पन्न होना दिखाया गया है, परन्तु सत्य बात उनके मुख से भी निकल ही गई है—

तात जनक तनया यह सोई।
धनुष यज्ञ जेहि कारण होई॥

यहाँ सीता को स्पष्ट ही जनक-तनया—जनक की पुत्री कहा है।

विवाह के अवसर पर राम की ३५ पीढ़ियों का उल्लेख किया गया है और सीताजी की २२ पीढ़ियों का। नामों का उल्लेख वंश-शुद्धि के लिए होता है। यदि सीता पृथिवी से उत्पन्न हुई थी तो कुल-परम्परा बताने का क्या प्रयोजन? कुल-परम्परा का वर्णन ही यह सिद्ध करता है कि सीता जनकजी की औरस पुत्री थी।

शिवपुराण में सीताजी की माता का नाम योगिनी बताया गया है—

से कहा कि यह कन्या वीर्यशुल्का है, अतः बिना पराक्रम की परीक्षा लिए मैं अपनी कन्या किसी को नहीं दूँगा।

ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुङ्गव।
मिथिलामप्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा॥ ९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब सब राजा इकट्ठे होकर अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए मिथिला में आये।

तेषां जिज्ञासमानानां वीर्यं धनुरुपाहृतम्।
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेपि वा॥ १०॥

उनकी परीक्षा के लिए मैंने यह धनुष उनके सम्मुख रखवाया, परन्तु उनमें से कोई भी उसका चिल्ला न चढ़ा सका।

तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने।
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन॥ ११॥

हे महामुने! पराक्रम की डींग हाँकनेवाले उन राजाओं को अल्पवीर्य समझ कर मैंने लौटा दिया।

हे तपोधन! (इसके पश्चात् जो हुआ) उसे सुनो—

ततः परमकोपेन राजानो मुनिपुङ्गव।
अरुन्धन्मिथिलां सर्वे वीर्यसंदेहमागताः॥ १२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तब उन हीन-पराक्रम राजाओं ने मिलकर मिथिला को घेर लिया।

परं भग्ना नृपतयो हन्यमाना दिशो ययुः।
अवीर्या वीर्यसंदिग्धाः सामात्याः पापकारिणः॥ १३॥

परन्तु अन्त में वे भीरु, वीरता की झूठी डींग हाँकनेवाले राजा मेरे द्वारा परास्त होकर अपने मन्त्रियों सहित चारों दिशाओं में भाग गये।

तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम्।
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत॥ १४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह वही दिव्य धनुष है। हे सुव्रत! मैं इसे राम-लक्ष्मण को भी दिखलाऊँगा।

यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम्॥ १५॥

यदि राम इस धनुष पर चिल्ला चढ़ा देंगे तो मैं कर्मणा क्षत्राणी अपनी पुत्री सीता इन्हें प्रदान कर दूँगा।

◀ षड्विंशः सर्गः ▶ (२६)

धनुष-भङ्ग और दशरथ के पास दूत भेजना—

जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः।
धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम्॥ १॥

राजा जनक की बात सुनकर विश्वामित्रजी ने कहा—राजन्! वह धनुष श्रीराम को दिखाइए।

ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह।
धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम्॥ २॥

तब राजा जनक ने मन्त्रियों को आदेश दिया कि गन्ध और पुष्पमालाओं से भूषित धनुष ले आओ।

तामादाय तु मञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः।
सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः॥ ३॥

जिस पेटी में वह धनुष रखा था उस लोहे की पेटी को लाकर मन्त्रियों ने देवतुल्य राजा से कहा—

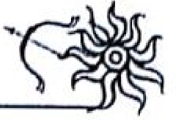
इदं धनुर्वरं राजन् पूजितं सर्वराजभिः।
मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शयैनं यदीच्छसि॥ ४॥

धन्या प्रिया द्वितीया तु योगिनी जनकस्य च।
तस्या कन्या महालक्ष्मीर्नाम्ना सीता भविष्यति॥

—शि० पु० पार्वती खण्ड २। २९

अर्थात् जनक की दूसरी पत्नी योगिनी धन्य है जिसकी कन्या सीता नाम से प्रसिद्ध होगी।

इस विषय के कुछ प्रमाण हमने अपनी पुस्तक 'मर्यादा-पुरुषोत्तम राम' में भी संगृहीत किये हैं, वहाँ देख लें।



हे मिथिलाधीश्वर! राजेन्द्र! यह धनुष जिसकी सब जनक राजाओं ने पूजा की है, उपस्थित है। अब आप जिसको चाहें उसे दिखाइए।

तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत।
विश्वामित्रं महात्मानं तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ॥ ५॥

मन्त्रियों की बात सुन राजा जनक ने हाथ जोड़ कर विश्वामित्र तथा राम-लक्ष्मण से कहा—

तदेतद्धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुङ्गव।
दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः॥ ६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह धनुषों में श्रेष्ठ धनुष आ गया है। हे महाभाग! आप इसे राजकुमारों को दिखाइए।

विश्वामित्रस्तु धर्मात्माश्रुत्वा जनकभाषितम्।
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत्॥ ७॥

धर्मात्मा विश्वामित्र राजा जनक के इन वचनों को सुन राम से बोले—वत्स! इस धनुष को देखा।

महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत्॥ ८॥

विश्वामित्रजी का आदेश पा राम उस पेटी को जिसमें धनुष था खोलकर और धनुष को देखकर बोले—

इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा॥ ९॥

हे ब्रह्मन्! अब मैं इस श्रेष्ठ धनुष को हाथ लगाता हूँ। मैं इसे उठाकर इस पर चिल्ला (रोदा) चढ़ाने का भी प्रयत्न करूँगा।

बाढमित्यब्रवीद्राजा मुनिश्च समभाषत।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः॥ १०॥

राजा और मुनि विश्वामित्र के 'बहुत अच्छा' कहने पर श्रीराम ने उस धनुष को बड़ी सरलता से बीच से पकड़ कर उठा लिया।

पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः।
आरोपयत्स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः॥ ११॥

सहस्रों मनुष्यों के समक्ष श्रीराम ने बिना प्रयास ही उस पर रोदा भी चढ़ा दिया।

आरोपयित्वा धर्मात्मा पूर्यामास वीर्यवान्।
तद्बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः॥ १२॥

महायशस्वी एवं बलवान् श्रीराम ने चिल्ला चढ़ाने के पश्चात् ज्योंही उसे खेंचा उस धनुष के बीच से टूटकर दो टुकड़े[1] हो गये।

तस्य शब्दो महानासीन्मोहिताश्च नराः सर्वे।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ॥ १३॥

धनुष के टूटने से घोर शब्द हुआ। उस शब्द से विश्वामित्र, राजा जनक, राम और लक्ष्मण को छोड़कर शेष सभी लोग स्तब्ध हो गये।

प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्राजा विगतसाध्वसः।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुङ्गवम्॥ १४॥

कुछ देर में लोगों की स्तब्धता भङ्ग होने पर घबराहट से मुक्त (जनक को घबराहट इस बात की

---

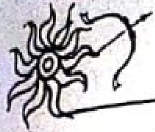
१. वाल्मीकि-रामायण में धनुष-भङ्ग का इतना ही वर्णन है। सन्त तुलसीदासजी ने जो वर्णन किया है वह आदि कवि के विरुद्ध होने से अग्राह्य है और साथ ही असम्भव गप्प भी। अवलोकन कीजिए—

भूप सहस दस एकहि बारा।
लगे उठावन टरइ न टारा॥

जिस धनुष को दस सहस्र राजा एक ही साथ उठाने लगे वह कितना बड़ा होगा, तनिक कल्पना कीजिए अथवा उसे उठानेवाले राजा नहीं, अपितु कीड़े-मकोड़े होंगे।

वस्तुतः सीता का स्वयंवर नहीं हुआ यह तो समाह्वय था। स्वयंवर का अर्थ है—'कन्या का स्वेच्छा से पति को वरण करना'। यहाँ सीता ने अपनी इच्छा से राम को पसन्द नहीं किया है, अपितु राजा जनक ने ही उसे वीर्यशुल्का घोषित किया था।

जब स्वयंवर ही नहीं हुआ तो दस सहस्र राजाओं का एक साथ एकत्रित होना और सबका एक साथ मिलकर धनुष को उठाना गपोड़े के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?



थी कि राम भी धनुष का चिल्ला न चढ़ा सके तो सीता का विवाह कैसे होगा?) वाक्पटु राजा जनक हाथ जोड़कर विश्वामित्रजीसे बोले—

भगवन्दुष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया॥ १५॥

भगवन्! मैंने दशरथ-पुत्र राम का पराक्रम देख लिया है। इनका पराक्रम अत्यद्भुत, कल्पना और तर्क से परे हैं।

जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम्॥ १६॥

मेरी पुत्री सीता दशरथनन्दन श्रीराम को पतिरूप में प्राप्त करके मेरे वंश की कीर्ति फैलायेगी।

मम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्यशुल्केति कौशिक।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता॥ १७॥

हे कौशिक! मैंने सीता के विवाह के लिए 'वीर्यशुल्क' की जो प्रतिज्ञा की थी वह पूर्ण हो गई। अब मैं प्राणों से भी बढ़कर प्रिय सीता को राम के लिए दूँगा।

भवतोऽनुमते ब्रह्मन् शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः।
मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः॥ १८॥

हे ब्रह्मन्! हे कौशिक! यदि आपकी अनुमति हो तो मेरे मन्त्री रथ पर सवार हो शीघ्र अयोध्या को जायें।

राजानं प्रश्रितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम।
प्रदानं वीर्यशुल्कायाः कथयन्तु च सर्वशः॥ १९॥

और महाराज दशरथ को विनययुक्त वाक्यों से वीर्यशुल्का सीता के विवाह की सूचना देकर और यहाँ का सम्पूर्ण वृत्तान्त बताकर यहाँ ले आवें।

कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः।
अयोध्यां प्रेषयामाम धर्मात्मा कृतशासनम्॥ २०॥

विश्वामित्रजी के 'तथास्तु' कहने पर राजा ने मन्त्रियों को बुलाकर उन्हें समझा और कुशलपत्र देकर अयोध्या के लिए रवाना किया।

❮ सप्तविंशः सर्गः ❯ (२७)

दशरथ की मिथिला चलने के लिए तैयारियाँ—

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः।
त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन्पुरीम्॥ १॥

जनक की आज्ञा पा वे दूत शीघ्रगामी रथों में आरूढ हो मार्ग में तीन रात्रि व्यतीत कर चौथे दिन अयोध्या में पहुँचे। उस समय उनके घोड़े थक गये थे।

राज्ञो भवनमासाद्य द्वारस्थानिदमब्रुवन्।
शीघ्रं निवेद्यतां राज्ञे दूतान्नो जनकस्य च॥ २॥

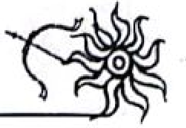
राजभवन की ड्योढ़ी पर जा उन्होंने द्वारपालों से कहा कि शीघ्र महाराज से निवेदन करो कि राजा जनक के दूत आपके दर्शन करना चाहते हैं।

इत्युक्ता द्वारपालास्ते राघवाय न्यवेदयन्।
ते राजवचनाद्दूता राजवेश्म प्रवेशिताः॥ ३॥

दूतों के ऐसा कहने पर द्वारपालों ने महाराज से निवेदन किया। तब राजा की आज्ञा से वे दूत राजभवन में भेजे गये।

ददृशुर्देवसङ्काशं वृद्धं दशरथं नृपम्।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे दूता विगतसाध्वसाः॥ ४॥
राजानं प्रयता वाक्यमब्रुवन् मधुराक्षरम्।
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम्॥ ५॥
मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंयुक्तया गिरा।
जनकस्त्वां महाराज पृच्छते स पुरः सरम्॥ ६॥
पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः।
कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत्॥ ७॥

वहाँ देवोपम वृद्ध महाराज दशरथ के दर्शन कर, उनके सौजन्य को देख उन्होंने निर्भय हो हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से ये मधुर वचन कहे—महाराज!



मिथिलेश्वर विदेहराज जनक ने बारम्बार मधुर और स्नेहयुक्त वाणी से उपाध्याय, पुरोहित और कर्मचारियों सहित आपका और आपके पुरवासियों का कुशल-मङ्गल पूछा है। आपकी कुशल-मङ्गल पूछकर उन्होंने विश्वामित्रजी की अनुमति से आपको यह सन्देश भेजा है—

पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा।
सेयं मम सुता राजन्विश्वामित्रपुरः सरैः ॥ ८ ॥
यदृच्छयाऽगतैर्वीरैर्निर्जिता तव पुत्रकैः।
अस्मै देया मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने॥ ९ ॥

यह तो आपको ज्ञात ही है कि मेरी कन्या वीर्यशुल्का है। मेरी उस कन्या को मेरे सौभाग्य से विश्वामित्र के साथ आकर आपके पुत्र ने जीत लिया है, अतः मैं अपनी वीर्यशुल्का पुत्री सीता का विवाह राम के साथ करना चाहता हूँ।

प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि।
सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरस्कृतः ॥ १० ॥
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ।
प्रीतिं च मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि॥ ११ ॥

मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहता हूँ, अतः आप मुझे आज्ञा दीजिए। हे महाराज! आप अपने उपाध्याय और पुरोहितों सहित यहाँ पधार कर अपने राजकुमारों को देखिए और मेरी प्रीति को निबाहिए।

दूतवाक्यं तु तत् श्रुत्वा राजा परमहर्षितः।
वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणश्चैवमब्रवीत्॥ १२ ॥

दूतों के कथन को सुन महाराज बड़े प्रसन्न हुए और वसिष्ठ, वामदेव तथा अनय ऋषियों से कहने लगे।

गुप्तः कुशिकपुत्रेण कौसल्यानन्दवर्धनः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विदेहेषु वसत्यसौ॥ १३ ॥

विश्वामित्र से रक्षित कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ आजकल मिथिलापुरी में हैं।

दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना।
सम्प्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति॥ १४॥

राजा जनक ने श्रीराम का पराक्रम भली-भाँति देख लिया है। अब वह अपनी पुत्री सीता का विवाह श्रीराम से करना चाहते हैं।

यदि वो रोचते वृत्तं[1] जनकस्य महात्मनः।
पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत्कालस्य पर्ययः॥ १५ ॥

यदि आपको यह बात ठीक लगे तो हमें शीघ्र मिथिलापुरी पहुँचना चाहिए जिससे समय का अतिक्रमण न हो।

मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः।
सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः॥ १६ ॥

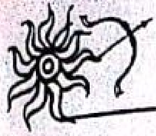
महाराज का वचन सुन मन्त्रियों और ऋषियों ने कहा, ''यह तो बहुत अच्छी बात है।'' तब महाराज ने प्रसन्न होकर मन्त्रियों से कहा—तो कल ही यहाँ से चल देना चाहिए।

मन्त्रिणस्तु नरेन्द्रेण रात्रिं परमसत्कृताः।
ऊषुः मुदिताः सर्वे गुणैः सर्वैः समन्विताः॥ १७॥

महाराजा दशरथ ने जनक के मन्त्रियों का (जो दूत बन कर आये थे) बड़ा सत्कार किया और उन लोगों ने वह रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत की।

---

१. **'यदि वो रोचते वृत्तम्'**—'यदि आपको उचित लगे' इन शब्दों को देखने से विदित होता है कि रामायण-काल में राजा लोग अपने घरेलू मामलों में भी ऋषियों और मन्त्रियों की सलाह लिया करते थे।



अष्टाविंशः सर्गः (२८)

राजा जनक द्वारा दशरथ का आतिथ्य—

ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः।
राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत्॥ १ ॥

रात्रि व्यतीत होने पर उपाध्याय और बन्धुओं सहित प्रसन्न, राजा दशरथ ने मन्त्री सुमन्त्र से कहा—

चतुरङ्गबलं सर्वं शीघ्रं निर्यातु सर्वशः।
ममाज्ञासमकालं च यानयुग्यमनुत्तमम्॥ २ ॥

मेरी आज्ञा से समस्त चतुरङ्गिणी सेना शीघ्र तैयार की जाये। रथ और पालकी आदि उत्तम यान भी शीघ्र चलें।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा॥ ३ ॥
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे।
यथा कालात्ययो न स्याद् दूता हि त्वरयन्ति माम्॥ ४ ॥

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय और कात्यायन—ये सब ब्राह्मण आगे-आगे चलें। मेरा रथ भी शीघ्र तैयार कराओ। ऐसा करो जिससे देर न हो, क्योंकि ये दूत चलने के लिए शीघ्रता कर रहे हैं।

वचनात्तु नरेन्द्रस्य सा सेना चतुरङ्गिणी।
राजानमृषिभिःसार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात्॥ ५ ॥

जब महाराज दशरथ ऋषियों के साथ प्रस्थानित हुए तब उनकी आज्ञा से चतुरङ्गिणी सेना उनके पीछे-पीछे चली।

गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान्।
राजा तु जनकः श्रीमाञ्श्रुत्वा पूजामकल्पयत्॥ ६ ॥

चार दिन मार्ग में बिताकर महाराज दशरथ जनकपुर में पहुँचे। राजा जनक ने उनका आना सुन उनके स्वागत की तैयारी की।

ततो राजनमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम्।
मुदितो जनको राजा हर्षं च परमं ययौ॥ ७ ॥

राजा जनक, वृद्ध महाराज दशरथजी से मिल कर और भी अधिक प्रसन्न हुए।

उवाच च नरश्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितः।
स्वागतं ते महाराज दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव॥ ८ ॥

नरश्रेष्ठ जनक हर्षित होकर नृपश्रेष्ठ दशरथजी से बोले—महाराज! मैं आपका स्वागत करता हूँ। मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आप यहाँ पधारे हैं।

दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः।
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः॥ ९ ॥

यह भी बड़े सौभाग्य की बात है कि महातेजस्वी महर्षि वसिष्ठ भी सब ऋषियों के साथ इस प्रकार यहाँ पधारे हैं जैसे देवताओं के साथ इन्द्र पधारते हैं।

दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम्।
राघवैः सह सम्बन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महात्मभिः॥ १० ॥

सौभाग्य से मेरे सारे विघ्न दूर हो गये और वीरों में श्रेष्ठ रघुवंशियों के साथ सम्बन्ध होने से मेरा कुल भी प्रतिष्ठित हो गया।

श्वः प्रभाते नरेन्द्र त्वं संवर्तयितुमर्हसि।
यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसत्तमैः॥ ११ ॥

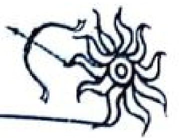
हे नरेन्द्र! कल प्रातःकाल यज्ञ समाप्त होने पर ऋषियों की सम्मति से विवाह-संस्कार सम्पन्न कराइए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिमध्ये नराधिपः।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः प्रत्युवाच महीपतिम्॥ १२ ॥

राजा के वचनों को सुन ऋषियों के मध्य में विराजमान बोलनेवालों में चतुर महाराज दशरथ ने कहा—

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम्॥ १३ ॥

हमने तो यह सुन रखा है कि—'दान दाता के अधीन होता है'—अतः हे धर्मज्ञ! जैसा आप कहेंगे हम वैसा ही करेंगे।



तद्धर्मिष्ठं यशस्यं च वचनं सत्यवादिनः।
श्रुत्वा विदेहाधिपतिः परं विस्मयमागतः॥ १४॥

सत्यवादी महाराज दशरथ के ऐसे धर्मयुक्त और यश बढ़ानेवाले वचन को सुनकर जनक बड़े विस्मित[1] हुए।

ततः सर्वे मुनिगणाः परस्परसमागमे।
हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन्सुखम्॥ १५॥

तदनन्तर ऋषियों ने भी परस्पर मिल-भेंट कर बड़ी प्रसन्नता के साथ वह रात्रि वहाँ व्यतीत की।

राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः।
उवास परमप्रीतो जनकेनाभिपूजितः॥ १६॥

राजा दशरथ भी अपने पुत्र राम-लक्ष्मण को देख अत्यन्त आनन्दित हुए और जनक से सत्कृत हो वहाँ सुखपूर्वक वास किया।

❮ एकोनत्रिंशः सर्गः ❯ (२९)

कुशध्वज को बुलाना—इक्ष्वाकुवंश-कथन

ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम्॥ १॥

प्रातः महर्षियों की सहायता से अपने यज्ञ को समाप्त कर राजा जनक पुरोहित शतानन्द से बोले—

भ्राता मम महातेजा यवीयानतिधार्मिकः।
कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम्॥ २॥

अत्यन्त धार्मिक, तेजस्वी एवं बलवान् मेरा छोटा भाई (सांकाश्य नामक) सुन्दरपुरी में रहता है।

वार्याफलकपर्यन्तां पिबन्निक्षुमतीं नदीम्।
सांकाश्यां पुण्यसंकाशां विमानमिव पुष्पकम्॥ ३॥

सांकाश्य नगरी के चारों ओर जल की खाई है और वह भाँति-भाँति के यन्त्रों से युक्त है। पास ही इक्षु नदी है जिसका मधुर जल कुशध्वज पीते हैं। वहाँ के निवासी धार्मिक हैं तथा वह पुरी पुष्पक विमान के आकार की है।

तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे मतः।
प्रीतिं सोऽपि महातेजा इमां भोक्ता मया सह॥ ४॥

मेरे यज्ञ में सामग्री आदि भेजकर सहायता करनेवाले अपने प्रिय भाई को मैं देखना चाहता हूँ। वह भी विवाहोत्सव में सम्मिलित हो आनन्द भोगे।

एवमुक्ते तु वचने शतानन्दस्य सन्निधौ।
आगताः केचिदव्यग्रा जनकस्तान्समादिशत्॥ ५॥

राजा जनक शतानन्दजी से इस प्रकार कह ही रहे थे कि कई कुशल दूत वहाँ आ पहुँचे। राजा ने उन्हें शीघ्र जाने की आज्ञा दी।

शासनात्तु नरेन्द्रस्य प्रययुः शीघ्रवाजिभिः।
सांकाश्यां ते समागत्य ददृशुश्च कुशध्वजम्॥ ६॥

महाराज की आज्ञा पा वे शीघ्रगामी दूत घोड़ों पर सवार हो सांकाश्यपुरी पहुँच कर राजा कुशध्वज से मिले और—

न्यवेदयन्यथावृत्तं जनकस्य च चिन्तनम्।
तद्वृत्तं नृपतिः श्रुत्वा दूतश्रेष्ठैर्महाजवैः॥ ७॥

महाराज जनक का सन्देश निवेदन किया। दूतों द्वारा महाराज का सन्देश पाकर—

आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः।
स ददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम्॥ ८॥

राजा जनक की आज्ञा से वे मिथिलापुरी में आकर धर्मवत्सल महाराज जनक से मिले।

सोऽभिवाद्य शतानन्दं राजानं चातिधार्मिकम्।
राजार्हं परमं दिव्यमासनं सोऽध्यरोहत॥ ९॥

महाराज जनक और पुरोहित शतानन्द को प्रणाम कर वे राजाओं द्वारा बैठने योग्य आसन पर बैठे।

---

१. विस्मित होने का कारण यह था कि जब राजा जनक की प्रतिज्ञानुसार सीता रामचन्द्रजी की हो चुकी तो दशरथ ऐसा विनम्र वचन क्यों कहते हैं। भाव यह है कि जनक सीता का दान नहीं करते वह तो वीर्यशुल्का है।



उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितौजसौ।
प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम्॥ १०॥
गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमैक्ष्वाकुमतिप्रभम्।
आत्मजैः सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम्॥ ११॥

जब दोनों भाई आसन पर बैठ गये तो उन दोनों वीरों ने अपने मन्त्री सुदामा को महाराज दशरथ के पास भेजते हुए कहा कि तुम दोनों कुमार और मन्त्रियों सहित महाराज दशरथ को बुला लाओ।

औपकार्यां स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम्।
ददर्श शिरसा चैनमभिवाद्येदमब्रवीत्॥ १२॥

मन्त्री ने डेरे पर जाकर महाराज दशरथ के सामने जा उन्हें अभिवादन किया और कहा—

अयोध्याधिपते वीर वैदेहो मिथिलाधिपः।
स त्वां दृष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम्॥ १३॥

हे वीर अयोध्या-नरेश! मिथिलाधिपति जनक, राजकुमारों, उपाध्याय और पुरोहित सहित आपके दर्शन करना चाहते हैं।

मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तदा।
सबन्धुरगमत्तत्र जनको यत्र वर्तते॥ १४॥

उस मन्त्री के वचन सुन महाराज दशरथ ऋषि और बन्धु-बान्धवों सहित वहाँ गये जहाँ जनक थे।

वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत्।
विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम्॥ १५॥

वहाँ जाकर वाक्कुशल महाराज दशरथ ने जनकजी से कहा—महाराज! आपको तो विदित है कि वसिष्ठजी इक्ष्वाकु कुल के देवता हैं।

वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः।
विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः सह सर्वैर्महर्षिभिः॥ १६॥
एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठो मे यथाक्रमम्।
तूष्णींभूते दशरथे वसिष्ठो भगवानृषिः।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोहितम्॥ १७॥

महर्षि वसिष्ठ ही हमारे सब कृत्यों में बोलनेवाले हैं, अतः महर्षि विश्वामित्र और अन्य ऋषियों के परामर्श से ये ही हमारी वंश-परम्परा का वर्णन करेंगे। जब दशरथ ऐसा कहकर चुप हुए तो महर्षि वसिष्ठ पुरोहित सहित जनक से कहने लगे—

मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः।
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम्॥ १८॥

मनु प्रथम प्रजापति थे। मनु से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ जो अयोध्या का प्रथम राजा था।

इक्ष्वाकोऽस्तु सुतः श्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः।
कुक्षेरथात्मजः श्रीमन्विकुक्षिरुदपद्यत॥ १९॥

इक्ष्वाकु के पुत्र श्रीमान् कुक्षि और कुक्षि के विकुक्षि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान्।
बाणस्य तु महातेजा अनरण्यो महायशाः॥ २०॥

विकुक्षि के पुत्र बाण थे जो अत्यन्त तेजस्वी और प्रतापी थे। बाण के महातेजस्वी और महायशस्वी अनरण्य हुए।

अनरण्यात्पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि।
त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः॥ २१॥

अनरण्य का पुत्र पृथु और पृथु का पुत्र त्रिशंकु हुआ। त्रिशंकु के धुन्धुमार नामक महायशस्वी पुत्र हुआ।

धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः।
युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः॥ २२॥

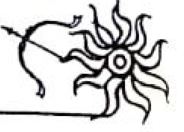
धुन्धुमार के पुत्र तेजस्वी एवं महारथी युवनाश्व थे। युवनाश्व के पृथिवीपति मान्धाता हुए।

मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान् सुसन्धिरुदपद्यत।
सुसन्धेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित्॥ २३॥

मान्धाता का पुत्र सुसन्धि हुआ। सुसन्धि के ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित दो पुत्र हुए।

यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो नाम नामतः।
भरतात्तु महातेजा असितो नाम जातवान्॥ २४॥

ध्रुवसन्धि के पुत्र यशस्वी भरत और भरत के महातेजस्वी असित उत्पन्न हुए।



यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः।
हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशिबिन्दवः॥ २५॥

हैहय, तालजंघ और शशिबिन्दु—ये तीनों शूरवीर पड़ौसी राजा असित के शत्रु हो गये।

तांस्तु प्रतियुध्यन्वै युध्ये राज्यात्प्रवासितः।
हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा॥ २६॥

उन्होंने असित को युद्ध में हराकर राज्य से बाहर निकाल दिया। तब राजा असित अपनी दोनों पत्नियों सहित हिमालय पर चले गये।

असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान्।
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतम्॥ २७॥

निर्बल असित वहाँ जाकर मर गये। उस समय उनकी दोनों स्त्रियाँ गर्भवती थीं, ऐसा सुना गया है।

एका गर्भविनाशाय सपत्न्यै सगरं ददौ।
सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत्॥ २८॥

सौत के गर्भ को नष्ट करने के लिए एक ने विष दे दिया। विष सहित पुत्र उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सगर हुआ।

सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान्।
दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः॥ २९॥

सगर के असमञ्ज, असमञ्ज के अंशुमान, अंशुमान के दिलीप और दिलीप के भगीरथ उत्पन्न हुए।

भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा।
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः॥ ३०॥

भगीरथ के ककुत्स्थ और ककुत्स्थ के रघु हुए। रघु का पुत्र महातेजस्वी प्रवृद्ध राक्षस के तुल्य हुआ।

कल्माषपादो ह्यभवत्तस्माज्जातश्च शङ्खणः।
सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात्॥ ३१॥

पीछे यह कल्माषपाद भी कहलाया। कल्माषपाद का पुत्र शंखन, शंखन के सुदर्शन और सुदर्शन के अग्निवर्ण उत्पन्न हुए।

शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः।
मरोःप्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात्॥ ३२॥

अग्निवर्ण के शीघ्रग, शीघ्रग के मरु, मरु के प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक का पुत्र अम्बरीष हुआ।

अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषः सत्यविक्रमः।
नहुषस्य ययातिश्च नाभागस्तु ययातिः॥ ३३॥

अम्बरीष का पुत्र सत्यपराक्रमी नहुष हुआ, नहुष के ययाति और ययाति के नाभाग उत्पन्न हुए।

नाभागस्य बभूवाज अजाद्दशरथोऽभवत्।
अस्माद्दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ३४॥

नाभाग के पुत्र अज और अज के पुत्र महाराज दशरथ, दशरथ के पुत्र ये दोनों भाई राम-लक्ष्मण हैं।

आदिवंशविशुद्धानां राज्ञां परमधर्मिणाम्।
इक्ष्वाकुकुलजातानां वीराणां सत्यवादिनाम्॥ ३५॥
रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि॥ ३६॥

हे नरश्रेष्ठ! आदि से ही विशुद्ध वंशवाले, धर्मिष्ठ, सत्यवादी और इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न राम-लक्ष्मण के लिए मैं आपकी पुत्रियाँ माँगता हूँ। अनुरूप वरों को अनुरूप कन्या आपको देना उचित ही है।

➤ त्रिंशः सर्गः ➤ (३०)

जनक-वंश वर्णन—

एवं ब्रुवाणं जनकः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः।
श्रोतुमर्हसि भद्र ते कुलं नः परिकीर्तितम्॥ १॥

वसिष्ठजी के ऐसा कहने पर, जनकजी हाथ जोड़ उनसे कहने लगे—हे महर्षे! आपका मङ्गल हो, अब मेरे कुल की परम्परा सुनिए।

प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलं निरवशेषतः।
वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामते॥ २॥



हे मुनिश्रेष्ठ! कन्यादान के समय कुलीन को अपने कुल का वर्णन करना चाहिए, अतः आप सुनिए—

राजाभूत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा।
निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतां वरः॥ ३॥

अपने शुभ-कर्मों द्वारा तीनों लोकों में प्रसिद्ध धर्मात्मा, सत्यवादी तथा वीरों में उत्तम निमि नाम का एक राजा था।

तस्यपुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः।
प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसुः॥ ४॥

निमि के मिथि नामक पुत्र हुआ। मिथि के जनक हुए (इसी जनक राजा के नाम पर हमारे कुल के सब राजा जनक कहलाते हैं)। इन आदि जनक के उदावसु हुए।

उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः।
नन्दिवर्धनपुत्रस्तु सुकेतुर्नाम नामतः॥ ५॥

उदावसु का पुत्र धर्मात्मा नन्दिवर्धन हुआ और नन्दिवर्धन के पुत्र सुकेतु हुए।

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः॥ ६॥

सुकेतु के धर्मात्मा देवरात हुए और देवरात का पुत्र राजर्षि बृहद्रथ हुआ।

बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान्।
महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः॥ ७॥

बृहद्रथ का पुत्र महावीर अत्यन्त वीर और प्रतापी था। महावीर का पुत्र सत्यपराक्रमी और धैर्यशाली सुधृति हुआ।

सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः।
धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः॥ ८॥

सुधृति के धर्मात्मा धृष्टकेतु और धृष्टकेतु के राजर्षि हर्यश्व हुए।

हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः।
प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः॥ ९॥

हर्यश्व का पुत्र मरु, मरु का प्रतीन्धक और प्रतीन्धक का पुत्र धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ हुआ।

पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः॥ १०॥

कीर्तिरथ के देवमीढ, देवमीढ के विबुध और विबुध का पुत्र महीध्रक हुआ।

महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः।
कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत॥ ११॥

महीध्रक के महाबली कीर्तिरात हुए और कीर्तिरात के राजर्षि महारोमा हुए।

महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत।
स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत॥ १२॥

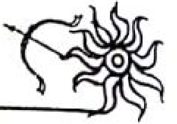
महारोमा का पुत्र धर्मात्मा स्वर्णरोमा हुआ और स्वर्णरोमा के राजर्षि हर्षरोमा हुए।

तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः।
ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः॥ १३॥

धर्मात्मा हर्षरोमा के दो पुत्र हुए। उनमें बड़ा मैं हूँ और दूसरा वीर कुशध्वज है।

ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुङ्गव।
सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय च॥ १४॥
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम्।
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्ददामि न संशयः॥ १५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं प्रीतिपूर्वक दो वधू आपको देता हूँ—सीता श्रीराम के लिए और ऊर्मिला लक्ष्मणजी के लिए। आपका कल्याण हो! वीर्यशुल्का सीता को जो देवकन्या के समान है और दूसरी ऊर्मिला को मैं तीन बार कहकर देता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है।



➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

चारों भाइयों के विवाह-सम्बन्ध का निश्चय—

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम्॥ १॥

जनक के ऐसा कहने पर वसिष्ठजी के अभिप्रायानुसार मुनि विश्वामित्रजी ने जनकजी से कहा—

अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि नरपुङ्गव।
इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन॥ २॥

हे राजन्! इक्ष्वाकु और विदेह—दोनों ही कुल आश्चर्यमय और असीम महिमावाले हैं। इनके समान अन्य कुल नहीं है।

सदृशो धर्मसंबन्धः सदृशो रूपसम्पदा।
रामलक्ष्मणयो राजन्सीता चोर्मिलया सह॥ ३॥

राजन्! राम और सीता का तथा लक्ष्मण और ऊर्मिला का विवाह-सम्बन्ध गुण-कर्म-स्वभाव और रूपसौन्दर्य—सब बातों में अनुरूप है।

वक्तव्यं व नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम।
भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः॥ ४॥

हे राजन्! यह होने पर भी मुझे इस पर कुछ वक्तव्य है, उसे सुनिए। आपका छोटा भाई धर्मज्ञ जो कुशध्वज है—

अस्य धर्मात्मनो राजन्रूपेणाप्रतिमं भुवि।
सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे॥ ५॥

इस धर्मात्मा कुशध्वज की दो कन्याओं को जो इस संसार में अपने सौन्दर्य में सर्वश्रेष्ठ हैं, वधू बनाने के लिए मैं माँगता हूँ।

भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः।
वरये ते सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः॥ ६॥

हे राजन्! एक कन्या बुद्धिमान् भरत के लिए और दूसरी शत्रुघ्न के लिए हम माँगते हैं।

पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः।
लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः॥ ७॥

महाराज दशरथ के चारों पुत्र रूप-यौवन-सम्पन्न लोकपालों के समान हैं और देवों के समान पराक्रमी हैं।

उभयोरपि राजेन्द्र संबन्धेनानुबध्याताम्।
इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः॥ ८॥

हे राजेन्द्र! भरत-शत्रुघ्न के सम्बन्ध से आप दोनों भाई इक्ष्वाकु कुल को बाँधिए। इक्ष्वाकु कुल भी निर्दोष है और आप भी पुण्यकर्मी हैं।

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ॥ ९॥

वसिष्ठजी सम्मत विश्वामित्रजी के वचन सुन, महाराज जनक हाथ जोड़कर दोनों ऋषियों से बोले—

कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुङ्गवौ।
सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम्॥ १०॥

मैं इस कुल को धन्य समझता हूँ, क्योंकि हम दोनों राजाओं के सदृश कुल-सम्बन्ध की आप स्वयं आज्ञा दे रहे हैं।

एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे।
पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ॥ ११॥

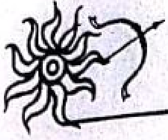
आपका कल्याण हो। आपकी आज्ञानुसार ही कार्य होगा। कुशध्वज की कन्याओं का विवाह भरत और शत्रुघ्न के साथ कर दिया जायेगा।

एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने।
पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः॥ १२॥

हे महामुने! एक ही दिन चारों महाबली राजकुमार चारों राजपुत्रियों का पाणि-ग्रहण करें।

तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः।
राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम्॥ १३॥

विदेहराज जनक के ऐसा कहने पर रघुवंशी राजा



दशरथ प्रसन्न हो जनकजी से बोले—

युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ।
ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः॥ १४॥

हे मिथिलेश्वर! आप दोनों भाइयों में असंख्य गुण हैं। आप दोनों ने ऋषियों और राजाओं का अच्छा सत्कार किया है।

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामि स्वमालयम्।
श्राद्धकर्माणि[१] सर्वाणि विधास्यामीति चाब्रवीत्॥१५

आपका कल्याण हो। अब मैं अपने डेरे पर जाकर श्रद्धा से किये जानेवाले अतिथि-सत्कार आदि कृत्यों को विधिपूर्वक सम्पन्न करूँगा।

तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा।
मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः॥ १६॥

इस प्रकार जनकजी से विदा हो दोनों ऋषियों को आगे कर महाराज दशरथ तुरन्त चल दिये।

स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम्॥ १७॥

डेरे पर जाकर महाराज दशरथ ने विधिपूर्वक एवं श्रद्धा सहित अतिथि-सत्कार आदि किया और अगले दिन प्रातःकाल होते ही गोदान-संस्कार[२] किया।

गवां शतसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः।
एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः॥ १८॥

महाराज दशरथ ने धर्मपूर्वक एक लाख गौएँ राजपुत्रों की मङ्गल-कामना के निमित्त एक-एक करके ब्राह्मणों को दीं।

स्वर्णशृङ्गाः सम्पन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः।
गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः॥ १९॥

सुवर्ण के सींगोंवाली, दुधार, बछड़ों और कांसे के दोहन पात्रों सहित चार लाख गाएँ दान कीं।

वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः।
ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः॥ २०॥

पुत्रवत्सल महाराज दशरथ ने पुत्रों के कल्याण के लिए बहुत-सा धन गोदान के उद्देश्य से ब्राह्मणों को दिया।

≺ द्वात्रिंशः सर्गः ≻ (३२)

विवाह-संस्कार—

यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम्।
तस्मिंस्तु दिवसे वीरो युधाजितसमुपेयिवान्॥ १॥

जिस दिन दशरथजी ने गोदान किया उसी दिन युधाजित् भी मिथिलापुरी पहुँचे।

पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः।
दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत्॥ २॥

(युधाजित्) केकयराज का पुत्र और भरत का मामा था। दशरथजी से मिल उनकी कुशलक्षेम पूछ, वे बोले—

केकयाधिपती राजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत्।
येषां कुशलकामोऽसि तेषां संप्रत्यनामयम्॥ ३॥

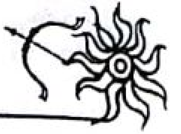
महाराज! केकयराज ने स्नेहपूर्वक आपको अपना कुशल संवाद कहा है। आप जिन लोगों का कुशल चाहते हैं वे सब (हम लोग) सम्प्रति कुशल हैं।

स्वस्त्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामौ महीपतिः।
तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन॥ ४॥

हे राजेन्द्र! केकयराज भरतजी को देखना चाहते

१. **'श्राद्धकर्माणि'** का अर्थ मृतक-श्राद्ध नहीं है। मृतक श्राद्ध तो अवैदिक और तर्क-रहित है, फिर विवाहावसर पर तो उसका कोई प्रकरण भी नहीं हो सकता, अतः ऊपर जो अर्थ दिया है वही सम्यक् है।

२. रामायण-काल में विवाह से पूर्व गोदान-संस्कार करने की प्रथा थी। इसमें हृष्ट-पुष्ट गौएँ ब्राह्मणों को दी जाती थीं।



हैं इसलिए पहले मैं अयोध्या गया था।

श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान्।
मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते॥ ५॥
त्वरयाऽभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम्।
अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम्॥ ६॥
दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत्।
ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः॥ ७॥

जब मैंने वहाँ सुना कि आप राजकुमारों का विवाह करने के लिए जनकपुर आये हुए हैं तो मैं अपने भाँजे को मिलने के लिए इधर चला आया। महाराज दशरथ ने अपने नातेदार (साले) को आया देख उसका आदर-सम्मान किया। तदनन्तर राजकुमारों सहित उन्होंने वह रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत की।

प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि तत्त्ववित्।
ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत्॥ ८॥

प्रातः नित्यकर्मों से निवृत्त होकर महाराज दशरथ ऋषियों सहित यज्ञशाला में गये।

युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः।
भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः॥ ९॥
वसिष्ठं पुरतः कृत्वा महर्षीनपरानपि।
वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत्॥ १०॥

विवाह के लिए नियत शुभ मुहूर्त में भूषणों से भूषित राम अपने भाइयों के साथ वैवाहिक वेश धारण किये हुए वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियों को आगे करके वहाँ (विवाह-मण्डप में) पहुँचे। तब भगवान् वसिष्ठ ने राजा जनक से कहा—

राजादशरथो राजन् कृतकौतुमङ्गलैः।
पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठ दातारमभिकाङ्क्षते॥ ११॥

हे राजन्! महाराज दशरथ अपने राजकुमारों से आरम्भिक मङ्गल कृत्य (ईश्वर-स्तुतिप्रार्थना-उपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण का पाठ) करा चुके हैं। हे नरश्रेष्ठ! अब वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना।
प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित्॥ १२॥

महात्मा वसिष्ठजी के ऐसा कहने पर श्रेष्ठ दाता महातेजस्वी एवं परम धार्मिक जनकजी बोले—

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां सम्प्रतीक्षते।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव॥ १३॥

महाराज को क्या मेरे किसी द्वारपाल ने रोका है? वे किसकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं? अपने घर के भीतर आने में क्या हिचक है। जैसा यह मेरा राज्य है वैसा ही उनका भी है।

तद्वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा।
प्रवेशयामास सुतान् सर्वानृषिगणानपि॥ १४॥

जनकजी के उस कथन को सुन महाराज दशरथ ने राजकुमारों और ऋषियों सहित मण्डप में प्रवेश किया।

ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत्।
कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक॥ १५॥
रामस्य लोकरामस्य क्रियां वैवाहिकीं प्रभो।
तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः।
अग्निमाधाय वेद्यां तु विधिमन्त्रपुरस्कृतम्॥ १६॥

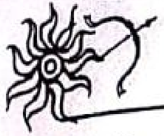
तदनन्तर राजा जनक ने वसिष्ठजी से कहा—ऋषिवर! अन्य ऋषियों सहित आप लोकप्रिय राम की विवाह सम्बन्धी सब क्रियाएँ कराइए। यह सुन और जनकजी से 'बहुत अच्छा' कह महर्षि वसिष्ठ ने विधिवत् मन्त्र उच्चारण कर वेदी में अग्नि स्थापित की।

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम्।
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा॥ १७॥

फिर सीताजी को आभूषणों से अलंकृत कर वेदी के निकट श्रीराम के सम्मुख बैठाया।

अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥ १८॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥ १९॥

तब राजा जनक कौसल्यानन्दवर्धन श्रीराम से बोले—हे राम! मेरी पुत्री सीता आज से आपकी



सहधर्मिणी हुई। आप इसे लीजिए और अपने हाथ से इसका हाथ पकड़िए। यह महाभागा पतिव्रता सदा छाया की भाँति आपकी अनुगामिनी रहेगी। आप दोनों का मङ्गल हो।

एवं दत्वा तदा सीतामब्रवीज्जनको राजा।
लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलां च ममात्मजाम्॥ २०॥
प्रतीछ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत्कालस्य पर्ययः।
तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषतः॥ २१॥

इस प्रकार सीता को श्रीराम को समर्पित कर राजा जनक बोले—हे लक्ष्मण! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम भी शीघ्र आकर मेरी पुत्र का पाणिग्रहण करो। विलम्ब मत करो, फिर राजा जनक ने भरतजी से कहा—

पाणिं गृह्णीष्व माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन।
शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीज्जनकेश्वरः॥ २२॥

हे भरत! तुम माण्डवी का पाणिग्रहण करो। तदनन्तर राजा जनक ने शत्रुघ्न से कहा—

श्रुत्कीर्त्या महाबाहो पाणिं गृह्णष्व पाणिना।
सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः[१]॥ २३॥
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः[२]।
जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन्॥ २४॥

हे शत्रुघ्न! तुम श्रुतकीर्ति का हाथ पकड़ो। हे रघुवंशियो! तुम सब अपनी पत्नियों के साथ सौम्य तथा श्रेष्ठाचारवाले होओ। शीघ्र पाणिग्रहण करो जिससे समय का अतिक्रमण न हो। राजा जनक के इस प्रकार कहने पर चारों राजकुमारों ने चारों राजकुमारियों के हाथ पकड़े।

काकुत्स्थैश्च गृहीतेषु ललितेषु च पाणिषु।
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदन्तरिक्षात्सुभास्वरा॥ २५॥

पाणिग्रहण हो चुकने पर उनके ऊपर उत्तम पुष्पों की खूब वर्षा की गई।

ईदृशे वर्तमाने तु तूर्योद्घुष्टनिनादिते।
त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः॥ २६॥

इस प्रकार (पुष्पवृष्टि होते हुए) और बाजों के बजते हुए, उन कुमारों ने तीन अग्नि की प्रदक्षिणा कर अपनी-अपनी पत्नियों को ग्रहण[२] किया।

अथोपकार्य जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः।
राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्वर्षिसङ्घः सबान्धवः॥ २७॥

तदनन्तर सब राजकुमार अपनी पत्नियों सहित जनवासे को गये। महाराज दशरथ भी ऋषियों और बान्धवों सहित पुत्रों को निहारते हुए डेरे पर आ गये।

---

१. ग्रिफिथ महोदय ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—

Now, Raghu's sons, may all of you,
Be gentle to your wives and true,
keep well the vows you make today
Let not occasion slip away.

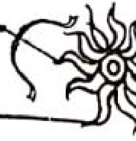
२. आइए, यहाँ विवाह के समय राम और सीताजी की अवस्था निर्णय कर लें। कुछ व्यक्तियों का ऐसा विचार है कि विवाह के समय सीता की अवस्था छह वर्ष और राम की अवस्था तेरह वर्ष थी, परन्तु यह विचार सर्वथा मिथ्या और भ्रामक है।

जब श्रीराम विश्वामित्रजी के साथ आये तो उनकी अवस्था १५ वर्ष की थी। (देखिए बा० ११/११) यहाँ राम को ऊनषोडशवर्ष कहा गया है। जिस समय श्रीराम-लक्ष्मण मिथिलापुरी पहुँचे हैं तो जनक उन्हें ''समुपस्थितयौवनौ''-जिन्होंने यौवन में पैर रखा है, कहते हैं। आयुर्वेद-ग्रन्थों के अनुसार यौवन पचीस वर्ष की अवस्था में आरम्भ होता है, अतः यह निश्चित है कि विवाह के समय राम की अवस्था २५ वर्ष से कम नहीं थी। वे १५ वर्ष की अवस्था में घर से निकले और २५ वर्ष की अवस्था में जनकपुर में पहुँचे। सीता की अवस्था भी उस समय १८ वर्ष की थी। वेद में कहा है—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥

—अथर्व० ११।५।१८

ब्रह्मचर्य के पालन से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है। यदि विवाह के समय सीता की अवस्था ६ वर्ष की



➤ त्रयस्त्रिंशः सर्गः ➤ (३३)

बारात की वापसी और परशुराम से मुठभेड़—

**अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः।
आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम्॥ १॥**

विवाहोपरान्त दूसरे दिन प्रातःकाल महर्षि विश्वामित्र दोनों राजाओं (जनक, दशरथ) से विदा माँग हिमालय पर चले गये।

**अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु।
गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः॥ २॥**

मिथिला-नरेश जनक ने बहुत-सा दहेज दिया। उन्होंने एक लाख तो गौएँ प्रदान कीं।

**कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमान्कोट्यम्बराणि च।
हस्त्यश्वरथपादातं दिव्यरूपं स्वलंकृतम्॥ ३॥**

बहुत-से बहुमूल्य दुशाले रेशमी वस्त्र और रेशम सदृश अन्य उत्तम वस्त्र भी दिये। अनेक सुन्दर और सजे-सजाये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल भी दिये।

**ददौ कन्यापिता तासां दासीदासमनुत्तमम्।
हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्तनां विद्रुमस्य च॥ ४॥
ददौ परमसंहृष्टः कन्याधनमनुत्तमम्।
दत्वा बहुधनं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम्॥ ५॥
प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः।
राजाप्ययोध्याधिपतिः सहपुत्रैर्महात्मभिः॥ ६॥
ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्य जगाम सबलानुगः।
गच्छन्तं स नरव्याघ्रः सर्षिसङ्घं स राघवम्॥ ७॥
ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम्।
भार्गवं जामदग्न्यं तं राजा राजविमर्दनम्॥ ८॥**

जनक ने उन कन्याओं को बहुत-से दास और दासियाँ दीं। अत्यन्त प्रसन्न चित्त जनक ने बहुत-सा सोना, चाँदी, मोती और मूँगे दिये। इस प्रकार बहुत सारा धन देकर राजा जनक दशरथजी से आज्ञा माँग अपने राजभवन में गये। महाराज दशरथ भी कुमारों को साथ लिये हुए तथा ऋषियों को आगे कर सेना सहित चल दिये। इस प्रकार ऋषियों और श्रीराम के साथ जाते हुए महाराज दशरथ ने भयंकर रूप धारण किये हुए, जटाजूट-धारी, भृगुवंशी जमदग्नि के पुत्र, राजाओं का मान मर्दन करनेवाले परशुराम को देखा।

**कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्।
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः॥ ९॥**

वे कैलास के समान दुर्धर्ष, कालाग्नि के समान दुस्सह, तेज से प्रकाशमान और पामर लोगों द्वारा दुर्निरीक्ष्य थे।

**स्कन्धे चासाद्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम्।
प्रगृह्य शरमुख्यं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम्॥ १०॥**

उनके कन्धे पर परशु (फरसा) था तथा बिजली के समान देदीप्यमान धनुष और बाण को लिये हुए

थी क्या उसका ब्रह्मचर्य-काल छह वर्ष में ही समाप्त हो गया था।

गोस्वामी तुलसीदासजी के चित्रण से भी यह बात स्पष्ट है कि विवाह के समय सीता की अवस्था छह वर्ष नहीं थी—

**रंग भूमि जब सिय पगुधारी।
देखि रूप मोहे नर नारी॥
सीय चकित चित रामहि चाहा।
भये मोह वस सब नर नाहा॥**

क्या छह वर्ष की सीता को देखकर ही सब लोग चकित हो गये थे? क्या छह वर्ष की अबोध सीता को यह भी ज्ञान हो गया था कि राम से ही विवाह करना चाहिए? है इन प्रश्नों का कोई उत्तर!

एक बात और। सीता की अवस्था छह वर्ष थी तो ऊर्मिला की अवस्था ५ वर्ष ही होगी। श्रुतकीर्ति और माण्डवी जो जनक के छोटे भाई की पुत्रियाँ थीं, उनकी अवस्था इस हिसाब से चार और तीन वर्ष की रही होगा। क्या यही अनर्गल प्रलाप मान लिया जाये?

वे ऐसे जान पड़ते थे मानो त्रिपुरासुर को मारने के लिए शिवजी आये हों।

तं दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम्।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे जपहोमपरायणाः॥ ११॥
सङ्गता मुनयः सर्वे सञ्जल्पुरथो मिथः।
कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्र नोत्सादयिष्यति॥ १२॥

दहकती हुई अग्नि के तुल्य दीप्त और भयानक रूपधारी परशुराम को देख जपहोम में तत्पर वसिष्ठादि सब ऋषि-मुनि इकट्ठे होकर आपस में कहने लगे कि पितृवध से क्रुद्ध हुआ यह परशुराम कहीं क्षत्रिय कुल को निर्मूल तो नहीं करेगा?

पूर्वं क्षत्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः।
क्षत्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम्॥ १३॥

क्षत्रियों का नाश करके पहले तो इनका क्रोध शान्त हो चुका था। अब क्या इनकी इच्छा पुनः क्षत्रियों का नाश करने की है?

एवमुक्त्वाऽर्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम्।
ऋषियो रामरामेति वचो मधुरमब्रुवन्॥ १४॥

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर ऋषिगण अर्घ्य लेकर घोर रूपधारी परशुराम के समक्ष आये और राम! राम! ऐसा मधुर वचन कहने लगे।

प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान्।
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत॥ १५॥

प्रतापी परशुराम ऋषियों द्वारा प्रदत्त उस आतिथ्य को ग्रहण कर श्रीरामचन्द्रजी से बोले—

❮ चतुस्त्रिंशः सर्गः ❯ (३४)

राम-परशुराम संवाद—

राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम्।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम्॥ १॥

हे दशरथनन्दन वीर! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत सुना जाता है। मिथिला में तुमने जो धनुष तोड़ा है वह भी हमने सुना है।

तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्त्वया।
तत् श्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्य परमं शुभम्॥ २॥

उस धनुष का तोड़ा जाना आश्चर्यजनक एवं अचिन्त्य है। उसी का वृत्तान्त सुन मैं एक दूसरा धनुष लेकर यहाँ आया हूँ।

तदिदं घोरसङ्काशं जामदग्न्यं महद्धनुः।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च॥ ३॥

यह भयंकर धनुष जमदग्नि का है। (अथवा इसका नाम जामदग्न्य है।) इस पर तीर चढ़ा कर आप अपना बल प्रदर्शित करें।

तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽस्य प्रपूरणे।
द्वन्द्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव॥ ४॥

इस धनुष पर तीर चढ़ाने से तुम्हारे बल को जानकर हम उसकी प्रशंसा करेंगे और तुम्हारे साथ द्वन्द्व-युद्ध करेंगे।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा।
विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ५॥

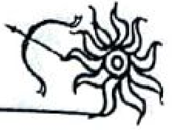
परशुराम के ये वचन सुनकर दशरथ उदास हो गये और दीनतापूर्वक हाथ जोड़ कर बोले—

क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः।
बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि॥ ६॥

हे परशुरामजी! आप तो तपस्वी ब्राह्मण हैं, आपका क्षत्रियों पर जो कोप था वह शान्त हो गया है, अतः आप मेरे बाल-पुत्रों को अभय-दान प्रदान कीजिए।

भार्गवाणां कुले जातः स्वाध्यायव्रतशालिनाम्।
सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं निक्षिप्तवानसि॥ ७॥

स्वाध्यायशील भार्गवकुल में उत्पन्न आप तो इन्द्र के समक्ष प्रतिज्ञा कर अपने हथियार त्याग चुके हैं। (ब्राह्मण होकर प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित नहीं।)



स त्वं धर्मपरो भूत्वा काश्यपाय वसुन्धराम्।
दत्वा वनमुपागम्य महेन्द्रकृतकेतनः ॥ ८ ॥

धर्मपरायण होकर और सारी पृथिवी का राज्य काश्यप को प्रदान कर आप तो महेन्द्राचल पर रहने के लिए चले गये थे।

ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्नयः प्रतापवान्।
अनादृत्यैव तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत॥ ९ ॥

महाराज दशरथ की इन बातों की अवहेलना कर वे श्रीराम से बोले—

योजयस्व धनुःश्रेष्ठे शरं परपुरञ्जयम्।
यदि शक्नोषि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः ॥ १० ॥

हे शत्रुओं के पुरों को जीतनेवाले! इस धनुष पर बाण चढ़ाइए। हे काकुत्स्थ! यदि तुमने इस पर बाण चढ़ा दिया तो मैं तुमसे द्वन्द्व-युद्ध करूँगा।

◀ पञ्चत्रिंशः सर्गः ▶ (३५)

परशुराम का पराभव—

श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा।
गौरवाद्यन्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत्॥ १ ॥

परशुरामजी के वचन सुन श्रीराम अपने पिता महाराज दशरथ के गौरव से (पिता का आदर कर) मन्दस्वर से बोले—

श्रुत्वानसि यत्कर्म कृत्वानसि भार्गव।
अनुरुध्यामहे ब्रह्मन् पितुरानृण्यमास्थितः ॥ २ ॥

हे परशुरामजी! आपने जो कर्म किये हैं, वे सब मैं सुन चुका हूँ। आपने अपने पिता के मारनेवालों से जो बदला लिया है वह भी मुझे ज्ञात है।

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम्॥ ३ ॥

परन्तु आप जो यह समझते हैं कि हम वीर्यहीन हैं, हममें क्षात्र-धर्म का अभाव है यह ठीक नहीं है। आज आप मेरा पराक्रम देखिए।

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य शरासनम्।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ४ ॥

ऐसा कह और क्रुद्ध हो पराक्रमी राम ने परशुराम के हाथ से धनुष और बाण खींच लिया।

आरोप्य सधनू रामः शरं सज्यं चकार ह।
जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम्॥ ५ ॥

श्रीराम ने उस पर चिल्ला चढ़ा कर और तीर को खेंच कर क्रुद्ध हो परशुराम से कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥ ६ ॥

हे भार्गव! एक तो आप ब्राह्मण होने के नाते मेरे पूज्य हैं, दूसरे आप विश्वामित्रजी के सम्बन्धी (विश्वामित्रजी की बहन के पौत्र) हैं, अतः इस बाण को आपके ऊपर छोड़कर मैं आपके प्राण तो लेना नहीं चाहता।

इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान्।
लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥ ७ ॥

किन्तु इस बाण से या तो आपकी गति को (अर्थात् लङ्गड़ा करके चलने-फिरने की शक्ति को) अथवा बल और तप द्वारा प्राप्त आपकी कीर्ति को नष्ट करूँगा। आप जो चाहें वही किया जाए।

तेजोऽभिहतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः।
रामं कमलपत्राक्षं मन्दं मन्दमुवाच ह॥ ८ ॥

श्रीराम के तेज के समक्ष जब परशुरामजी जड़ के समान वीर्यहीन हो गये तब वे कमलनेत्र राम से धीरे-धीरे कहने लगे।

काश्यपाय मया दत्ता यदा पूर्वं वसुन्धरा।
विषये मे न वस्तव्यमिति मां काश्यपोऽब्रवीत्॥ ९ ॥

हे राम! क्षत्रियों का वध करके जब मैंने यह भूमि काश्यप मुनि को दी थी तब उन्होंने कहा था

कि आज से तुम हमारी भूमि या राज्य में न बसना।

सोऽहं गुरुवचः कुर्वन् पृथिव्यां न वसे निशाम्।
तदिमां त्वं गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव॥ १०॥

अतः गुरुवचन का पालन करता हुआ मैं रात्रि में पृथिवी पर नहीं रहता, इसलिए हे राघव! आप मेरे चलने-फिरने की शक्ति को नष्ट न कीजिए।

लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया।
जहि ताञ्छरमुख्येन मा भूत्कालस्य पर्ययः॥ ११॥

हे राम! हमने तप द्वारा जो कीर्ति और यश[१] प्राप्त किया है उसको इस बाण से समाप्त कर दीजिए। जल्दी कीजिए इस कार्य में विलम्ब न हो।

तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान्।
रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम्॥ १२॥

जब प्रतापी परशुराम ने श्रीराम से ऐसा कहा तब श्रीराम ने उस उत्तम बाण को छोड़ दिया।

स हतान्दृश्य रामेण स्वाँल्लोकाँस्तपसार्जितान्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः॥ १३॥

परशुराम तप से अर्जित अपने यश और कीर्ति को राम द्वारा विनष्ट देखकर, उनकी प्रदक्षिणा कर अपने स्थान को चले गये।

❮ षट्त्रिंशः सर्गः ❯ (३६)

अयोध्या-आगमन, भरतशत्रुघ्न का ननिहाल-गमन—

अभिवाद्ये ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन्।
पितरं विकलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः॥ १॥

परशुराम के चले जाने पर श्रीराम वसिष्ठादि ऋषियों को प्रणाम कर और अपने पिताजी को विकल देखकर बोले—

जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी।
अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता॥ २॥

परशुरामजी गये, अब आप अपनी चतुरङ्गिणी सेना को अयोध्या चलने की आज्ञा दीजिए।

रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम्।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्नि चाघ्राय राघवम्॥ ३॥

राम का यह कथन सुन महाराज दशरथ ने अपने पुत्र को बाहुओं से आलिङ्गन कर उसका माथा सूँघा।

गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः।
पुनर्जातं तदा मेने पुत्रमात्मानमेव च॥ ४॥

परशुरामजी का जाना सुन दशरथ अत्यन्त

---

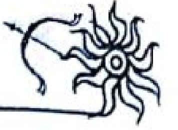
१. परशुराम ने अपने तप और बल के द्वारा कहीं आकाश में कोई लोक संगृहीत नहीं किया था। अपितु अपने तप और भुजबल से इक्कीस बार क्षत्रियों का विध्वंस करके जो यश और कीर्ति प्राप्त की थी उसी को यहाँ लोक शब्द से कहा गया है। राम ने उसे परास्त कर उसके सारे गर्व और गौरव को, यश और कीर्ति को धूल में मिला दिया। क्या परशुराम का एक उदीयमान योद्धा से पराजित हो जाना उसके यश को बट्टा नहीं लगाता?

विशेष—महर्षि वाल्मीकि ने परशुराम की घटना का वर्णन उस समय किया है जब बारात अयोध्या के लिए लौट रही है। इसके विपरीत तुलसीदासजी ने इस घटना का वर्णन धनुष-भङ्ग के तुरन्त पश्चात् मिथिलापुरी में ही किया है। दूसरी बात तुलसीदासजी के वर्णन में लक्ष्मणजी बीच-बीच में बोलते हैं, परशुराम को चिढ़ाते हैं और उन्हें क्रोध दिलाते हैं। यतिवर लक्ष्मण का ऐसा चित्रण आर्यमर्यादा और शील के सर्वथा विरुद्ध है।

ऐसा प्रतीत होता है, तुलसीदासजी लक्ष्मणजी का नहीं, अपितु ठाकुरों का चित्रण कर रहे हैं।

महर्षि वाल्मीकिजी के वर्णन में श्रीलक्ष्मण मौन हैं और यही शालीनता एवं शिष्टता है।

इस प्रकार चाहे हम प्रामाणिकता की दृष्टि से देखें अथवा आर्य आचार-विचार और मर्यादा की दृष्टि से, आदिकवि वाल्मीकि का वर्णन ही उपयुक्त है।



आनन्दित हुए। उन्होंने अपना और अपने पुत्र का पुनर्जन्म माना।

चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम्।
पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्‌घुष्टनिनादिताम्॥ ५॥

महाराज ने सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया और शीघ्र ही ध्वजा एवं पताकाओं से सुशोभित और बाजों की ध्वनि से निनादित अयोध्यापुरी में प्रवेश किया।

सिक्तराजपथारम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम्।
राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलवादिभिः॥ ६॥

अयोध्या की सड़कें जल से सिक्त थीं, उन पर पुष्प बिखरे हुए थे। महाराज के आगमन से प्रसन्नमुख नगर-निवासी अनेक प्रकार के आशीर्वादात्मक वचन बोले रहे थे।

सम्पूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलङ्कृताम्।
पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः॥ ७॥

ऐसी अलंकृत और नागरिक जनों से पूर्ण अयोध्या में महाराज दशरथ ने प्रवेश किया। पुरवासी ब्राह्मणों ने नगर से आगे बढ़ उनका हार्दिक स्वागत किया।

पुत्रैरनुगतः श्रीमान् श्रीमद्‌भिश्च महायशाः।
प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम्॥ ८॥

महायशस्वी एवं श्रीमान् महाराज दशरथ अपने पुत्रों सहित अपने हिमालय के समान श्वेत राजभवन में प्रविष्ट हुए।

कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा।
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः॥ ९॥

उधर कौसल्या, सुमित्रा और बिचली कैकेयी तथा अन्य राज-परिवार की स्त्रियाँ वधुओं को उतारने में जुटीं।

ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम्।
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपपत्नयः॥ १०॥

राजपत्नियाँ महाभागा सीता, यशस्विनी ऊर्मिला और कुशध्वज की दोनों पुत्रियों को महलों में लिवा ले गईं।

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा।
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिः सहिता रहः॥ ११॥

तदनन्तर चारों राजपुत्रियाँ अभिवादन करने योग्यों का अभिवादन करके अपने पतियों के साथ एकान्त में रमण करने लगीं।

कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः।
शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः॥ १२॥

विवाहित, अस्त्र-विद्या में निपुण, धन से युक्त और मित्रों सहित चारों राजकुमार पिता की सेवा करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे।

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम्।
भरतं कैकेयीपुत्रमब्रवीद्रघुनन्दनः॥ १३॥

कुछ समय व्यतीत होने पर राजा दशरथ कैकेयीपुत्र भरत से कहने लगे—

अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक।
त्वां नेतुमागतो वीर युधाजिन्मातुलस्तव॥ १४॥

हे पुत्र! केकयराज का पुत्र तुम्हारा मामा युधाजित् तुम्हें लेने के लिए आया है।

श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः कैकेयीसुतः।
गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा॥ १५॥

कैकेयीपुत्र भरत महाराज दशरथ के ये वचन सुन, शत्रुघ्न सहित जाने की तैयारी करने लगे।

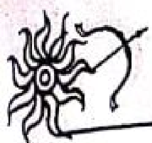
आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम्।
मातश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ॥ १६॥

तदनन्तर नरश्रेष्ठ वीरवर भरत अपने पिता, दयालु भाई राम तथा कौसल्यादि माताओं से आज्ञा ले, शत्रुघ्न सहित चले गये।

गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
पितरं देवसङ्काशं पूजयामासतुस्तदा॥ १७॥

भरतजी के चले जाने पर राम और लक्ष्मण अपने देवतुल्य पिता की सेवा करने लगे।

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः।
चकार रामो धर्मात्मा प्रियाणि च हितानि च॥ १८॥



धर्मात्मा राम पिताजी की आज्ञानुसार पुरवासियों के लिए प्रिय और हितकर राज्यकार्य करने लगे।

मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः।
गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत॥ १९॥

वे नियमपूर्वक माताओं की सेवादि मातृकार्य और गुरुओं के गुरुकार्य समय-समय पर देखने-भालने लगे।

एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तदा।
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः॥ २०॥

श्रीराम के ऐसे शील, स्वभाव और व्यवहार से महाराज दशरथ, ब्राह्मण, व्यापारीवर्ग और सभी राष्ट्रवासी सन्तुष्ट थे।

रामस्तु सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून्।
मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः॥ २१॥

श्रीराम सदा सीता के हृदय-मन्दिर में विराजमान रहते थे। इस प्रकार राम ने सीता के साथ बहुत ऋतुओं (बारह वर्ष तक) विहार किया।

॥ इति बालकाण्डम्॥

— ० —

बालकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	३६
श्लोक-संख्या	६०८
टिप्पणियाँ	३९